शोधादर्श

६०

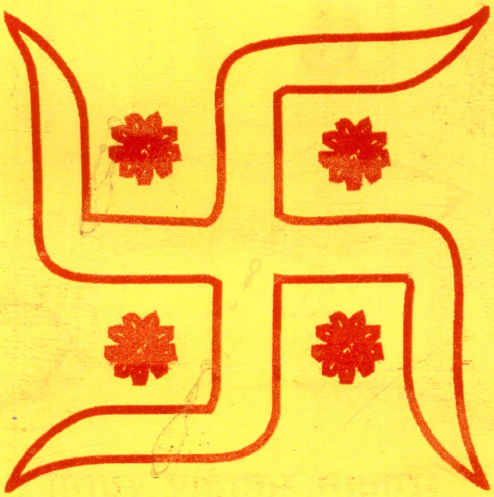

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

आद्य सम्पादक	:	(स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक	:	(स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
सलाहकार	:	डॉ. शशि कान्त
सम्पादक	:	श्री रमा कान्त जैन
सह–सम्पादक	:	श्री नलिन कान्त जैन
		श्री सन्दीप कान्त जैन
		श्री अंशु जैन 'अमर'

प्रकाशक :

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ- २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -६०

वीर निर्वाण संवत् २५३३ **नवम्बर २००६ ई.**

विषय क्रम

१.	गुरुगुण-कीर्तन : पं. फूलचन्द्र शास्त्री	श्री रमा कान्त जैन	१
२.	सम्पादकीय : शोधादर्श की षष्ठिपूर्ति	श्री रमा कान्त जैन	७
३.	जाति और धर्म	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	१०
४.	निर्वाण महोत्संव एवं श्रद्धांजलि पर्व - दीपावली	श्री अजित प्रसाद जैन	१४
५.	विघटन श्रेयस्कर नहीं	डॉ. शशि कान्त	१७
६.	सामायिक परिदृश्य : क्षणिकाएं	श्री रमा कान्त जैन	२२
७.	संस्कृत में जैन स्तोत्र साहित्य	डॉ. मालती जैन	२३
८.	जैन पुराणों में आर्थिक इतिहास	डॉ. जिनेन्द्र कुमार जैन	२६
६.	श्रीमद्भगवद्गीता के 'विश्वरूपदर्शन' पर जैन दार्शनिक दृष्टि	डॉ. नलिनी जोशी	३४
१०.	अबला और जैन लॉ	श्री अंशु जैन 'अमर'	३८
११.	धर्म के दशलक्षणों में प्रथम शौच या सत्य ?	श्री मनोहर मारवडकर	४२
१२.	तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.		४३
१३.	डॉ. दौलत सिंह कोठारी	श्री रमा कान्त जैन	४४

१४. वासोकुण्ड-वैशाली के जनमानस में महावीर	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	४८
१५. शहीद अण्णा पत्रावले	श्री अंशु जैन 'अमर'	५२
१६. पंचकल्याणक कार्यक्रमों में बोलियों का औचित्य	श्री नरेश चन्द्र जैन	५४
१७. संतिणाहत्थुदी (श्री शांतिनाथ स्तुति)	मुनिश्री सुनील सागर	५५
१८. महावीर-गुणगान	श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	५६
१९. भावों से सुख धन मिलता है	डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया	५७
२०. बिन्दु चला है सिन्धु से मिलने	डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'	५८
२१. जीवन अल्प विराम	डॉ. गणेशदत्त सारस्वत	५९
२२. साहित्य-सत्कार :		
रात्रि भोजन : एक वैज्ञानिक दृष्टि	श्री अंशु जैन 'अमर'	६०
Fundamentals of Jainism; ABC of Jainism;		
समयसार-ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका;		
अष्टपाहुड: एक अध्ययन; पुरुषार्थ देशना.;		
अनुभूति एवं दर्शन (मुक्त काव्य संकलन)	श्री रमा कान्त जैन	६०
२३. प्रबुद्ध वर्ग की बीस पसंदीदा जैन पत्रिकाओं में शोधादर्श		६४
२४. समाचार विमर्श :	श्री रमा कान्त जैन	६५
मिड डे मील में शामिल होगी मछली, गुजरात धार्मिक		
स्वतन्त्रता (संशोधन) विधेयक २००६, नवरात्र में कुलदेवियों		
की पूजा-अर्चना, सुप्रीम कोर्ट की जैन मंदिर ढहाने पर फिलहाल रोक,		
जागरण सिटी में प्रकाशित लेख		
२५. समाचार विविधा		६९
२६. अभिनन्दन		७१
२७. शोक संवेदन		७३
२८. आभार		७३
२९. पाठकों के पत्र		७४
३०. शोधादर्श में प्रकाशित २१ शोध-प्रबन्ध सार-संक्षेप		८१
३१. लेखादि अनुक्रमणिका (अंक ५५-६०)	श्री नलिन कान्त जैन	८२
३२. शोधादर्श पर चन्द अभिमत		९२

गुरुगुण-कीर्तन

पं. फूलचन्द्र शास्त्री

आगमज्ञो महान् विद्वांस्तथा तदनुवादकः।
फूलचन्द्रसमः कश्चिन् न भूतो न भविष्यति।।

♦♦ ♦♦ ♦♦ ♦♦

व्याप्तः सर्वत्र भूमौ शशधरधवलः शम्भुहासापहासी
कीर्तिस्तोमो यदीयो जनयति नितरां क्षीरापाथोधिशङ्काम्।
यस्मिन् सम्मग्नकाया अमरपतिगजो दिग्गजाचन्द्रतारा
जाता सर्वाङ्गशुभ्राः स जयति सततं फूलचन्द्रो बुधेन्द्रः।।

उपर्युक्त दो श्लोकों में पं. अमृतलाल शास्त्री ने आगम के ज्ञाता और उसके अनुवादक महा विद्वान फूलचन्द्र जी की धवलकीर्ति का जयगान किया है। वह वस्तुतः बीसवीं शती ईस्वी में हुए दिगम्बर आम्नायी जैन धर्मावलम्बी विद्वानों में अग्रिम पंक्ति के रहे।

पं. फूलचन्द्र जी का जन्म ११ अप्रैल, १९०१ ई. को ललितपुर जिले के सिलावन ग्राम में हुआ था तथा ३१ अगस्त, १९९१ ई. को वह रुड़की में साधिक ९० वर्ष की वय प्राप्त कर दिवंगत हुए थे। उनके पिताजी बरया वंशीय सिंघई दरयावलाल थे और माताजी का नाम जानकीबाई था। वह अपने माता-पिता की चौथी सन्तान थे। उनकी प्राणोबाई नामक एक बड़ी बहन, तदनन्तर दो बड़े भाई और एक छोटा भाई भैयालाल थे। बचपन में तीन-चार साल की वय में उनकी आँखें फूल आई थीं और काफी उपचार के उपरान्त ही आँखें ठीक हुईं और उनमें ज्योति आई। सिलावन में कोई स्कूल नहीं था। अतः पढ़ने के लिये उन्हें ढाई मील दूर खजुरिया गाँव की प्राइमरी पाठशाला में मार्ग में दो नदियों को पार कर जाना पड़ता था। उक्त पाठशाला में उन्होंने पहली कक्षा तक ही शिक्षा ग्रहण की। प्रारम्भ से ही कुशाग्रबुद्धि होने के कारण कक्षा में प्रथम स्थान पाने पर एक पुस्तक पुरस्कार स्वरूप पाई। तब वह १० वर्ष के थे। पढ़ाई छूट गई। बाद में अपने अग्रज के अनुकरण पर उन्होंने अपने मौसेरे भाई रज्जूलाल बरया से **तत्त्वार्थसूत्र** और तदनन्तर अपनी बहन के यहाँ **भक्तामर स्तोत्र** पढ़ना सीखा। और वह १५-१६ वर्ष के हो गये। उस समय इन्दौर में सेठ हुकमचन्द द्वारा खोले गये विद्यालय में साढूमल, सौंरई, जिजियावन आदि गाँवों के लड़के पढ़ने

जाते थे। उनके मन में भी वहाँ पढ़ने जाने की इच्छा जागृत हुई। वह इन्दौर गये और वहाँ पर एक-सवा वर्ष रह संस्कृत व **छहढाला** आदि का अध्ययन किया। तदनन्तर साढूमल में छात्रावास सहित पाठशाला खुलने पर उन्होंने वहाँ पर प्रधानाध्यापक पं. घनश्यामदास की छत्रछाया में मध्यमा तक अध्ययन किया। वहाँ से वह मुरैना विद्यालय में पढ़ने चले गये। वहाँ पर पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री और पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री उनके सहाध्यायी थे और पं. बंशीधर न्यायालंकार **कर्मकाण्ड** पढ़ाते थे। पं. बंशीधर फूलचन्द्र जी की कुशाग्रबुद्धि से बड़े प्रभावित हुए। वहीं पं. देवकीनन्दन सिद्धान्तशास्त्री से भी फूलचन्द्र जी का परिचय हुआ। किसी कारणवश जब बुन्देलखण्ड के सभी छात्रों और अध्यापकों ने मुरैना विद्यालय छोड़ा तब फूलचन्द्र जी भी घर चले आये।

मुरैना से लौटने पर गणेश प्रसाद वर्णी जी की कृपा से बुन्देलखण्डवासियों के लिये जबलपुर में शिक्षा मंदिर खुलने का सुयोग बना। वर्णीजी ने फूलचन्द्र जी की योग्यता आँक ली थी। उन्होंने शिक्षा मन्दिर आरम्भ होने के पूर्व ही पं. बंशीधर से फूलचन्द्र जी को वहाँ रु. २५/- मासिक पर सहायक अध्यापक की नियुक्ति दिये जाने की बात पक्की कर दी। इस प्रकार अध्ययन के साथ-साथ अध्यापन और जीविकोपार्जन का क्रम भी आरम्भ हो गया। किन्तु ७-८ माह जबलपुर रह कर वह वाराणसी चले आये और वहाँ पर भी वर्णीजी की कृपा से उनकी विशेष वृत्ति रु. २५/- मासिक निश्चित कर दी गई। वाराणसी २-३ माह रह कर जब ग्रीष्मावकाश में घर आये तब पुतलीबाई से उनका विवाह हो गया। पं. देवकीनन्दन के अनुरोध पर वह साढूमल विद्यालय में प्रधानाध्यापक हो गये। सात-आठ माह पश्चात् सन् १९२४ ई. में स्याद्वाद विद्यालय वाराणसी के विशेष आमन्त्रण पर वहाँ धर्माध्यापक हो गये। साथ ही बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रति शनिवार धर्म की शिक्षा देने जाने लगे। चार वर्ष बाद सन् १९२८ ई. में वहाँ से त्यागपत्र देकर घर सिलावन लौट आये। तदनन्तर चार वर्ष तक बीना की पाठशाला में रु. ६०/- मासिक पर प्रधानाध्यापक पद पर कार्य किया। और वहीं अपने कुटुम्बीजनों को भी गाँव से बुलाकर दुकान खुलवा दी। बीना पाठशाला की आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाने पर वह नातेपुते (सोलापुर) चले आये और वहाँ छह वर्ष रहे। वहाँ रहते हुए उन्होंने आचार्य शान्तिसागर सरस्वती भवन की ओर से एक प्रेस की स्थापना कर उसका संचालन किया तथा 'शान्ति सिन्धु' नामक मासिक पत्र का सम्पादन भी किया

जो सन् १९३५-३७ ई. में लगभग दो वर्ष चला। नातेपुते से बीना लौटने पर उन्हें अमरावती में डॉ. हीरालाल जैन ने **षट्खंडागम** की **धवल टीका** के सम्पादन में सहयोग के लिये आमंत्रित कर दिया। इस टीका की **सत्प्ररूपणा** नामक प्रथम पुस्तक का अनुवाद पं. हीरालाल शास्त्री पहले ही कर चुके थे। उन्होंने उसमें संशोधन किया। टीका की द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पुस्तकों के सम्पादन-अनुवाद आदि का कार्य पं. हीरालाल जी के साथ करने के अनन्तर उनसे अनबन रहने और अपने प्रथम पुत्र के निधन से दुखी हो वह पुनः बीना लौट आये। सन् १९४१ ई. में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, मथुरा, के आमन्त्रण पर **कषायपाहुड** की **जयधवला टीका** के अनुवाद-सम्पादन आदि कार्य हेतु पुनः वाराणसी जाना और कई वर्षों तक रहना हुआ। इसी बीच सन् १९४५ ई में अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद की स्थापना होने पर उसके संयुक्त मंत्री नियुक्त हुए और उसके कार्यालय का भार सम्हाला। उक्त परिषद के प्रथम अधिवेशन के आयोजन में कार्याधिक्य के कारण यकृत (लीवर) रोग से ग्रसित होकर सात माह तक अन्न का दर्शन भी दुर्लभ हो गया। इस बीमारी में आजीविका भी बन्द हो गई। पण्डितजी के शब्दों में, "किसी पण्डित की आजीविका कितनी? काम करो, वृत्ति लो।" आजीविका बन्द हो जाने पर पास में जो सोना-चाँदी था उसमें से कुछ हिस्सा बेचकर काम चलाने लगे। यह समाचार गणेश प्रसाद वर्णीजी के कानों तक पहुँचा। उनकी आत्मा द्रवीभूत हो उठी। तत्काल उन्होंने बा० रामस्वरूपजी बरुआसागर वालों को संकेत कर रु. ६००/- भिजवाये। उन्हें गुरुकृपा का सहारा मिला और वह अच्छे होकर पुनः **जयधवला** के सम्पादन में जुट गये। वर्णीजी के इस उपकार के प्रतिदान स्वरूप कालान्तर में उन्होंने उन छह सौ रुपयों से श्री गणेशप्रसाद दि. जैन वर्णी ग्रन्थमाला की मंगल स्थापना कर समाज को अनेक महत्वपूर्ण प्रकाशन प्रदान किये।

इस प्रकार स्व अध्यवसाय से कई शिक्षायतनों में शिक्षाग्रहण कर सिद्धान्त शास्त्री बने पं. फूलचन्द्र जी ने स्वल्प वृत्ति पर अध्यापकी से अपनी जीविकोपार्जन की यात्रा प्रारम्भ की और अनेक उतार-चढ़ावों के मध्य श्रुत-सेवा और साहित्य-साधना करते हुए समग्र जीवन व्यतीत किया। उन्हें जिन ग्रन्थों के सम्पादन, अनुवाद और टीका आदि रचने का श्रेय है, उनके नाम हैं- **प्रमेयरत्नमाला** (१९२८ ई.), **आलापपद्धति** (१९३४ ई.), **धवलाटीका** (पुस्तक १ से ४ तथा पुस्तक ६ से १६ सन् १९३६ से १९८४ तक प्रकाशित), **जयधवला टीका** (१६ पुस्तकों में सन् १९४४ ई. से १९८८

ई. तक प्रकाशित), **सप्ततिकाप्रकरण** (हिन्दी अनुवाद सहित १९४८ ई.), **तत्वार्थ सूत्र** (हिन्दी अनुवाद व भाष्य सहित १९५० ई.), **पंचाध्यायी** (हिन्दी अनुवाद १९५० ई.), **महाबन्ध** (पुस्तक २ से ७ सन् १९५३ ई. से १९५८ ई. तक), **ज्ञानपीठ पूजांजलि** (१९५७ ई.), **सर्वार्थसिद्धि** (संपादन-अनुवाद विशद प्रस्तावना सहित १९६० ई.), **समयसारकलश** (भावार्थ सहित १९६४ ई.), **कानजी स्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ** (१९६४ ई.), **खनिया तत्व-चर्चा** (दो भाग १९६७ ई.), **सम्यग्ज्ञानदीपिका** (सम्पादन व अनुवाद १९७० ई.), **लब्धिसार-क्षपणसार** (१९८० ई.), तथा **आत्मानुशासन** (१९८३ ई.)। साथ ही उन्हें **जैनधर्म और वर्ण व्यवस्था** (१९४५ ई.), **विश्वशान्ति और अपरिग्रहवाद** (१९४९ ई.), **जैन तत्वमीमांसा** (१९६० से १९९६ ई. तक तीन बार), **वर्ण, जाति और धर्म** (१९६३ ई.), **जैन तत्व समीक्षा का समाधान** (१९८७ ई.), **अकिंचित्कर, एक अनुशीलन** (१९९० ई.), और **परवार जैन समाज का इतिहास** (१९९२ ई.) नामक मौलिक कृतियों का प्रणयन करने; पूर्वोक्त **शान्ति-सिन्धु** पत्रिका के अतिरिक्त **ज्ञानोदय** पत्रिका का सम्पादन (१९४९-५२ ई.), करने; तथा विविध विषयों पर ६८ लेखों को अपनी लेखनी से प्रसूत करने का श्रेय रहा है। इस प्रकार पं. फूलचन्द्र जी ने जैन वाङ्मय को ही नहीं, भारती के भण्डार को समृद्ध किया। उनके इस विपुल साहित्य सृजन से सारा विद्वज्जगत अभिभूत रहा है और डॉ. नंदलाल जैन ने उन्हें **धवला और जयधवला** टीकाओं के कर्त्ता स्वामि वीरसेन (७१०-७९० ई.) की तथा डॉ. राजाराम जैन ने **षट्खण्डागम** (७५ ई.) के प्रणेता भगवन्तद्वय पुष्पदन्त और भूतबलि की उपमा दी है।

लेखनी के साथ ही वाणी के धनी पं. फूलचन्द्र जी प्रखर वक्ता और जैन सिद्धान्त के कुशल व्याख्याता रहे। सिद्धान्त सम्बन्धी अपनी मान्यताओं को वह किसी के विरोध की परवाह किये बिना निडरता से प्रस्तुत करते थे और प्रतिपक्ष की शंकाओं का सयुक्तिक समाधान भी करते थे। अपने विचारों के सम्बन्ध में उन्होंने किसी से समझौता नहीं किया- चाहे खनिया तत्त्व-चर्चा रही हो, 'संजद' पद प्रकरण रहा हो, कानजी स्वामी का प्रकरण रहा हो अथवा समाज सुधार की बात रही हो। पण्डित जी के ज्ञान और विद्वत्ता से जैन ही नहीं अनेक जैनेतर भारतीय और विदेशी विद्वान भी प्रभावित रहे।

बाल्यावस्था से ही घर-परिवार में पाये सेवापरायणता के संस्कारों का उन पर जीवन भर प्रभाव रहा। किशोरावस्था में एक बार जब वह घोड़े से अपनी बहन के

घर जा रहे थे उन्हें रास्ते में एक व्यक्ति सड़क से कुछ दूर हटकर कराहता हुआ दिखाई पड़ा। वह घोड़े से उतर कर उसके पास गये। वह ज्वर से पीड़ित था। उन्होंने उसे घोड़े पर बैठाया और स्वयं लगाम पकड़कर पैदल चलने लगे। मार्ग में ही रात हो गई। धीरे-धीरे उस व्यक्ति को लेकर बहन के गाँव पहुँचे और उसे वहाँ सुला दिया। प्रातःकाल ज्वर उतर जाने पर उसे जाने दिया। स्वयं की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न होते हुए भी अपने विपन्न शिष्यों और अन्य व्यक्तियों को आर्थिक सहायता प्रदान कराने में वह तत्पर रहे। अपने शिष्यों को कितने स्नेह और परिश्रम से वह शिक्षा प्रदान करते थे इसका गुणगान उनके कई शिष्यों ने अपने संस्मरणों में किया है।

इन्दौर विद्यालय से ग्रीष्मावकाश में जब घर आये तो शौक में आकर उन्होंने कोट, पैंट और कमीज बनवायी तथा एक बेल्ट और मूठ लगी छड़ी खरीदी। किशोर फूलचन्द्र जी को इस पोशाक में देखकर गाँव के किसी बुजुर्ग ने उन पर व्यंग्य कस दिया। बस उन्होंने यावज्जीवन अपना पुराना पहनावा अपनाने का निश्चय कर लिया।

सन् १६२० ई. में जब फूलचन्द्र जी साढूमल पाठशाला में पढ़ते थे महात्मा गाँधी ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अपना असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया था। फूलचन्द्र जी उस आन्दोलन से प्रभावित हुए और वह अपने सह अध्यायियों के साथ आन्दोलन के पक्ष में ग्रामीणों को एकत्र कर भाषण देने लगे। कलेक्टर की ओर से धमकी आई कि आन्दोलन बन्द हो, अन्यथा पाठशाला बन्द कर दी जायगी। तब उन्होंने अपने सहयोगियों से विचार-विमर्श करके 'मुट्ठी फण्ड' की स्थापना की और अनाज एकत्र कर उसे गरीबों में वितरित करते रहने का कार्य प्रारंभ किया। सन् १६२८ ई. के लगभग बीना में कांग्रेस के आंदोलनों में सक्रिय सहयोग किया। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार हेतु उन्होंने एक युक्ति यह निकाली कि मंदिर में देशी वस्त्रों को रखवा देते थे और जो भी महिला विदेशी साड़ी पहनकर आती थी उसे वहाँ उतारकर देशी साड़ी पहनने को कहा जाता था। बीना, सागर, सोलापुर तथा अमरावती में फूलचन्द्र जी जिला कांग्रेस के पदाधिकारी रहे। जब उनके साले गोकुलचंद सत्याग्रह के कारण ललितपुर जेल भेज दिये गये तब मुकदमे की सुनवाई हेतु वह बीना से ललितपुर गये। वह भी गिरफ्तार कर लिये गये। वह १६ दिन हवालात में तथा १ माह ११ दिन झांसी जेल में रहे। जेल में रहते हुए बीमार पड़ गये। जेल अस्पताल का भोजन उन्हें नहीं भाया। अपना दूध-दलिया बगल के नाई को दे देते थे। स्वयं भूखे रहने लगे। नाई से उनकी यह दशा देखी नहीं गई। कहीं से जुगाड़ कर उसने

उनके लिये रोटी-सब्जी का प्रबन्ध किया। तब छुआछूत की परवाह किये बिना उसके साथ मिल बांटकर भोजन करने लगे।

प्रारंभ से ही क्रान्तिकारी विचारधारा वाले पं. फूलचन्द्र जी ने बुन्देलखण्ड की जैन समाज में दस्सों को पूजाधिकार दिलाने, परवार और सैमया समाजों में मेल कराने तथा मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश के समर्थन में अहम् भूमिका निभायी। साथ ही गजरथ महोत्सवों में धर्म के नाम पर किये जा रहे अपव्यय का विरोध किया और तीर्थों की सुरक्षा की वकालत की।

अनेक संस्थाओं की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करने वाले, स्वभाव से स्वाभिमानी पं. फूलचन्द्र जी अधिक समय तक एक ही स्थान पर टिक कर रहने वाले व्यक्ति नहीं थे। जब भी उन्हें आत्म सम्मान को ठेस लगती प्रतीत हुई, स्थान परिवर्तन कर दिया। अस्तु उन्होंने अपनी लम्बी जीवनयात्रा काफी कुछ अनिश्चितता की डगर पर पूरी की। अनेक बार लम्बी बीमारियों से जूझना पड़ा, वह भी आजीविका के अभाव के साथ। तदपि सरल-सादा, संतोषयुक्त जीवन वहन करते हुए अपनी धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक और साहित्यिक गतिविधियों के साथ-साथ वह अपने पारिवारिक दायित्वों से विमुख नहीं रहे। अपनी संतति को उन्होंने उच्च शिक्षा दिलाई। उनकी तीन सुपुत्रियां-डॉ. शान्ति, सुशीला और पुष्पा हैं और इनमें से दो अमेरिका में हैं। उनके पुत्र डॉ अशोक कुमार आई.आई.टी., रुड़की, में भौतिकी के प्रोफेसर हैं। अपने जीवन में उन्होंने पर्याप्त यश, मान-सम्मान अर्जित किया। सन् १९८५ ई. में उन्हें समाज द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया गया और मरणोपरान्त स्मरणांजलि स्वरूप २००४ ई. में **'पंडितजी'** पुस्तक का प्रकाशन हुआ।

इस वर्ष ३१ अगस्त को पं. फूलचन्द्र जी को दिवंगत हुए १५ वर्ष पूर्ण हो गये। भले ही सशरीर वह अब हमारे मध्य नहीं हैं, अपने कृतित्व और व्यक्तित्व से वह सदा अमर रहेंगे और भावी पीढ़ियों को प्रेरणा प्रदान करते रहेंगे। उनकी स्मृति को सादर नमन करते हुए लेखनी को विराम देता हूँ।

- रमा कान्त जैन

ध्यान- प्रबन्ध-प्रभवेन येन निहत्य कर्म-प्रकृतिः समस्ताः।
मुक्ति स्वरूपां पदवीं प्रपेदे तं संभवं नौमि महानुरागात्।।

अज्ञातकर्तृक स्वयम्भू स्तोत्र से

भावार्थ - सतत ध्यान के प्रभाव से जिन्होंने समस्त कर्म प्रकृतियों का नाश कर मोक्ष पद प्राप्त किया उन संभवनाथ भगवान को मैं बड़े अनुराग से नमस्कार करता हूँ।

सम्पादकीय-

शोधादर्श की षष्ठिपूर्ति

अपने सुधी पाठकों के कर-कमलों में **शोधादर्श** का ६०वां अंक भेंट करते हुए हमें आनन्दानुभूति हो रही है। यह स्वाभाविक है। जब कोई व्यक्ति ६० वर्ष की आयु पूर्ण कर लेता है, वह साठा-पाठा कहलाता है। जब कोई परीक्षार्थी परीक्षा में ६० प्रतिशत अंक प्राप्त कर लेता है तब उसे प्रथम श्रेणी में आने का गौरव प्राप्त होता है। फरवरी १९८६ ई. में इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., लखनऊ के माध्यम से जैन विद्या के विविध पहलुओं पर तथ्यपरक व शोधपरक एक चातुर्मासिक शोधपत्रिका का श्रीगणेश कर जो बीज बोया था वह अब साधिक २० वर्ष की अवधि में पल्लवित-पुष्पित होते हुए ६०वें पुष्प के रूप में प्रस्फुटित हुआ है।

जैन विद्या के क्षेत्र में चल रही शोध प्रवृत्तियों को दर्पणवत प्रतिबिम्बित करने और उनमें योग देने में यथाशक्य प्रयत्नवान हो सकने के उद्देश्य से डाक्टर साहब ने यह पत्रिका प्रारम्भ की थी। यद्यपि श्रद्धेय डाक्टर साहब एक निष्ठावान शुद्ध तेरहपंथ दिगम्बर आम्नायी जैन श्रावक अपनी व्यक्तिगत आस्था में थे, परन्तु इतिहास के आलोक में और धर्म-दर्शन साहित्य की समीक्षा में उनकी दृष्टि एक न्यायाधीश के सदृश थी जिसमें वह पंथ-व्यामोह से निरपेक्ष और ज्ञात तथ्यों के सापेक्ष एक युक्तियुक्त मत निर्धारित करते थे। वह शोध के क्षेत्र में सत्यान्वेषण पर आधारित विवेकपूर्ण न्यायिक निरूपण के पक्षधर थे, न कि सैद्धान्तिक या पंथिक पक्ष के पिष्टपेषण को प्रोत्साहित करने के। अपनी इसी नीति को अपनाते हुए डाक्टर साहब ने **शोधादर्श** के प्रथम ६ अंक प्रकाशित किये।

११ जून, १९८८ ई., को डाक्टर साहब के महाप्रयाण के उपरान्त **शोधादर्श** के सम्पादन का भार अग्रज डॉ. शशि कान्त जी पर पड़ा और मैं उनका सहभागी बना। डॉ. शशि कान्त जी ने आद्य सम्पादक डॉ. ज्योति प्रसाद जी की रीति-नीति का अनुसरण करते हुए, आदरणीय चाचाजी श्री अजित प्रसाद जैन के मार्गदर्शन में, अपने स्वतन्त्र-चिन्तन और प्रखर लेखन से पत्रिका को नये आयाम प्रदान किये।

नवम्बर १९८८ ई. में अंक ८ में 'चिन्तन-कण' प्रदान कर चाचाजी, जो तब तक पत्रिका की केवल प्रबन्ध व्यवस्था से जुड़े हुए थे, ने जो अपनी लेखनी चलानी प्रारम्भ की वह उनके जीवन के अन्त तक चलती रही। नवम्बर १९९६ ई. से उन्होंने

शोधादर्श के प्रधान सम्पादक का दायित्व संभाल लिया। अपने संपादन काल में उन्होंने **'शोधादर्श'** में एक सामयिक पत्रिका का रस भी भर दिया। अपने लेखों, सम्पादकीयों और 'समाचार विमर्श' के अन्तर्गत सामयिक टिप्पणियों के माध्यम से वह अपने विचार निर्भयता और निष्पक्षता से प्रकट करते रहे।

अपनी साधिक बीस वर्ष की जीवन-यात्रा में **शोधादर्श** को जहाँ आद्य सम्पादक डॉ. ज्योति प्रसाद जी और प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जी की छत्रच्छाया से वंचित होना पड़ा है, वहीं इस बात का सन्तोष है कि प्रखर चिंतक डॉ. शशि कान्त जी का मार्गदर्शन बना हुआ है और युवा पीढ़ी के सर्वश्री नलिन कान्त जैन, सन्दीप कान्त जैन एवं अंशु जैन 'अमर' का सम्पादन-सहयोग इससे आ जुड़ा है।

इस अवसर पर इस बात का विहंगावलोकन कर लेना समीचीन होगा कि इन ६० अंकों में **शोधादर्श** ने अपने सुधी पाठकों को क्या विविध सामग्री प्रदान की। इन सभी अंकों पर दृष्टि डालने पर विदित हुआ कि ५,५०० पृष्ठों में ५३ सम्पादकीय; जैन धर्म-दर्शन, साहित्य, इतिहास, पुरातत्व-कला आदि विषयों पर ४५४ शोधपरक लेख; विभिन्न विश्वविद्यालयों में जैन विद्या से सम्बन्धित विषयों पर हुए शोध कार्यों की जानकारी देने के साथ-साथ २१ शोध प्रबन्धों का सार-संक्षेप; विभिन्न जिज्ञासाओं-चर्चाओं के प्रसंग से ८७ चिन्तन कण; समसामयिक विषयों पर १७६ समाचार विमर्श; प्राचीनकाल से लेकर अर्वाचीन काल तक की जैन विभूतियों के संबंध में ५८ गुरुगुण कीर्तन; १४४ पद्य रचनाएं; २ नाटिकाएं; ७३ रिपोर्ट और ४० व्यक्ति परिचय प्रकाशित हुए। साहित्य-सत्कार के अन्तर्गत ६५८ कृतियों आदि की समीक्षा-परिचय दी गई। **पुस्तक खण्ड** के अन्तर्गत (१) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की **'जैन ज्योतिः ऐतिहासिक व्यक्तिकोश;'** (२) कवि नाथूराम कृत **'आत्मदर्शन'**, (३) कवि मनोहरदास विरचित **'ज्ञानचिन्तामणि'**, और (४) कवि आसाराम विरचित **'नेमिचन्द्रिका'** नामक ४ पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। पत्रिका से २८८ विद्वान लेखक/रचनाकार जुड़े और ३२५ प्रबुद्ध पाठकों ने समय-समय पर पत्रिका के अंकों पर अपना अभिमत व्यक्त किया।

जुलाई १९८८ ई. में श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन स्मृति अंक; मार्च १९९५ ई. में रजत पुष्प २५; जुलाई १९९८ ई. में सारस्वत-सम्मान विषयक अंक ३५; मार्च, जुलाई व नवम्बर २००१ ई. में भगवान वर्द्धमान महावीर की २६००वीं जन्मशती के पावन अवसर पर उनके जन्म, देशना और निर्वाण को समर्पित अंक ४३, ४४ व ४५; नवम्बर २००५ ई. में श्री अजित प्रसाद जैन स्मृति अंक; तथा मार्च २००६ ई. में गोम्मटेश्वर बाहुबलि भगवान के महामस्तकाभिषेक के उपलक्ष में अंक - इस प्रकार आठ विशेषांक प्रदान करने का श्रेय भी **शोधादर्श** को है।

जिन विद्वान मनीषी लेखकों व रचनाकारों का योगदान **शोधादर्श** को अब तक प्राप्त हुआ है तथा जिन सुधी पाठकों ने अपना अभिमत व्यक्त कर हमें पत्रिका को अब तक जारी रखने के लिये प्रोत्साहित किया है उन सभी के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं। पत्रिका की इस ६० अंक तक की यात्रा के दौरान हमारे कई विद्वान मनीषी लेखक-रचनाकार तथा सुधी पाठक काल के कराल हाथों द्वारा हमसे बिछुड़ गये हैं, उन सभी को श्रद्धांजलि अर्पित है।

शोधादर्श ४२ में पृष्ठ ३४१-३८६ पर **शोधादर्श** १-४२ में प्रकाशित सामग्री की, **शोधादर्श** ४८ में पृष्ठ ७८-८६ पर शोधादर्श ४३-४८ में प्रकाशित सामग्री की, तथा **शोधादर्श** ५४ में पृष्ठ ७६-८६ पर **शोधादर्श** ४६-५४ में प्रकाशित सामग्री की अनुक्रमणिका दी गई थी। उसी के क्रम में प्रस्तुत अंक के अन्त में **शोधादर्श** ५५-६० में प्रकाशित सामग्री की अनुक्रमणिका दी जा रही है।

विद्वज्जगत और प्रबुद्ध पाठकों ने **शोधादर्श** पत्रिका का कैसा आकलन और स्वागत किया है इसकी एक झलक पाने को अंक के अन्त में चन्द अभिमत उद्धरित हैं। प्रसन्नता की बात है कि अनेक गणमान्य विद्वान लेखक-रचनाकार इस पत्रिका में अपने लेख-रचना आदि प्रकाशित होना अपना अहोभाग्य मानते हैं और पत्र-पत्रिकाएं इसमें प्रकाशित सामग्री को उद्धृत करने में गौरव का अनुभव करती हैं। स्थान-सीमा के कारण प्राप्त सभी सामग्री को स्थान दे पाना कठिन होता है। अतः लेखक महानुभावों से हमारा विनम्र अनुरोध है कि वे अपने शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख, यथावश्यक संदर्भ/स्रोत सूचित करते हुए, यथासंभव ३-४ पृष्ठों में ही टंकित अथवा सुवाच्य अक्षरों में लिखित, भेजने की कृपा करें तथा लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

पत्रिका का उद्देश्य इसके नामानुरूप शोध का आदर्श प्रस्तुत करना है जिसका अभिप्राय है कि जो विवेचन किया जाय वह समग्र भारतीय इतिहास और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में भी समीचीन हो। यद्यपि लेखक अपने विचारों के लिये स्वतन्त्र हैं और उनसे सम्पादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तदपि यह प्रयास रहता है कि विवादग्रस्त मुद्दों से यथासंभव बचा जाय और आम्नाय/सम्प्रदाय निरपेक्ष तथा तथ्य सापेक्ष प्रस्तुतिकरण किया जाय।

अपने सभी प्रिय पाठकों और विद्वान बन्धुओं को नव वर्ष २००७ के लिये शुभकामना के साथ लेखनी को विराम देता हूँ।

- रमा कान्त जैन

जाति और धर्म

– डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

अखिल भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में जिन धर्म अपनी उदाराशयता एवं बिना किसी भेदभाव के प्राणीमात्र के हित-सुख की व्यापक दृष्टि के कारण महत्वपूर्ण विलक्षण स्थान रखता आया है। "धर्म" शब्द की एक व्याख्या के अनुसार वह ऐसा कर्तव्य है जो मनुष्यमात्र के ही नहीं, प्राणीमात्र के इहलौकिक तथा पारलौकिक, उभय जीवन को नियन्त्रित एवं अनुशासित करके सबको सुपथ पर ले चलने में सहायक होता है। जैन धर्म या जिन धर्म तो वस्तुतः आत्मधर्म है। यह एक ऐसा व्यक्तिवादी धर्म है जो बिना किसी भेदभाव के समस्त प्राणियों के ऐहिक तथा पारलौकिक उन्नयन और सुख-सुविधा का विचार करता है। इसके विपरीत, सामाजिक या लौकिक धर्म केवल मनुष्यों के ही इहलौकिक हितसाधन तक सीमित होता है, और बहुधा विविध अनगिनत अन्धविश्वासों तथा रूढ़ियों पर अवलम्बित रहता है। आत्मधर्म से भिन्न यह लौकिक धर्म मूलतः प्रवृत्ति प्रधान ब्राह्म-वैदिक परम्परा की देन है, जिसने शनैः शनैः वर्णाश्रमधर्म का रूप ले लिया। उस परम्परा में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्णभेद मूलतः गुण क्रमानुसारी ही थे, किन्तु समय के साथ उनके जन्मतः होने की मान्यता रूढ़ होती गई। जैन गृहस्थों के सामाजिक या लौकिक धर्म पर कालान्तर में उक्त ब्राह्मणीय वर्णव्यवस्था तथा उससे उद्भूत जाति-व्यवस्था का प्रभाव पड़ा, और धीरे-धीरे उन्होंने उसे अपना लिया। किन्तु मूल जिन धर्म की प्रकृति एवं स्वरूप के साथ उसकी कोई संगति नहीं है। कुन्दकुन्द, गुणधर, धरसेन, भूतबलि, वट्टकेरि, शिवार्य, समन्तभद्र, पूज्यपाद, जटासिंहनंदि, रविषेण, हरिवंशकार, जिनसेन, अकलंक, गुणभद्र, अमितगति, प्रभाचन्द, शुभचन्द्र प्रभृति अनेक प्राचीन प्रामाणिक आचार्यपुंगवों ने जन्मतः जातिप्रथा का निषेध ही किया है और गुणपद की ही स्थापना की है। इस विषय में दिगम्बर-श्वेताम्बर समग्र जैन संस्कृति का सुस्पष्ट उद्घोष रहा है कि-

कम्मणा होई बम्हणा, खत्तियो हवई कम्मणा
कम्मणा होई वैस्सो सुद्दोवि हवइ कम्मणा।।

वास्तव में प्रचलित जातिप्रथा कभी और कैसी भी रही हो, तथा किन्हीं परिस्थितियों में उपादेय अथवा शायद क्वचित् आवश्यक भी रही हो, किंतु कालदोष

एवं निहित स्वार्थों के कारण उसमें जो कुशील या कुरीतियां, विकृतियां, विसंगतियां एवं अंध विश्वास घर कर गये हैं, और परिणामस्वरूप देश में, राष्ट्र में, समाज में एक ही धर्म सम्प्रदाय के अनुयायियों में जो टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं, पारस्परिक फूट, वैमनस्य एवं भेद-भाव खुलकर सामने आ रहे हैं, वे व्यक्ति या समूह, सम्प्रदाय या समाज, देश या राष्ट्र किसी के लिए भी हितकर नहीं हैं, और प्रगति के सबसे बड़े अवरोधक हैं। धर्म की आड़ लेकर या कतिपय धर्मशास्त्रों, साधुओं, पंडितों आदि की साक्षी देकर जो उक्त विघटनकारी धारणाओं का पोषण किया जाता है, और उनके विरोध में आवाज उठाने वाले का मुंह बन्द करने की चेष्टा की जाती है उससे यह आवश्यक हो जाता है कि धर्म के मर्म को धर्म की मूलाम्नाय के प्रामाणिक मौलिक शास्त्रों से जाना और समझा जाय।

धर्म-तत्त्व मानव इतिहास की एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। सभी देशों और कालों में जन-जन के मानस को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला यही धर्म-तत्व रहा है। साथ ही, प्रायः सभी धर्म-प्रवर्तकों ने, उन्होंने भी जिन्होंने मनुष्येतर अन्य प्राणियों की उपेक्षा की, मनुष्यों को ऊँच-नीच आदि के पारस्परिक भेदभावों से ऊपर उठने का ही उपदेश दिया। यहूदी, ईसाई, मुसलमान यहाँ तक कि बौद्ध, कबीरपंथी, सिख आदि कई भारतीय धर्म भी, मनुष्यमात्र की समानता (इगैलिटेरियनिज्म) का दावा करते हैं। श्रमण परम्परा के निर्ग्रन्थ तीर्थंकरों द्वारा आचरित एवं उपदेशित जिनधर्म का तो मूलाधार ही समत्व भाव है। यदि कोई अपवाद है तो वह ब्राह्मण-वैदिक परम्परा से उद्भूत वर्णाश्रम धर्म पर आधारित और जन्मतः जातिवाद को स्वीकार करने वाला तथाकथित हिन्दू धर्म है। यों तो मूलतः समानतावादी एवं जातिवाद-विरोधी परम्पराओं में भी ऊँच-नीच का वर्गभेदपरक जातिवाद किसी-न-किसी प्रकार या रूप में घर कर ही गया, किन्तु उनमें उसकी जकड़ और पकड़ इतनी सख्त नहीं है जितनी कि हिन्दू धर्म में है। आज का प्रगतिशील विश्वमानस ऐसे भेदभावों को मानव के कल्याण एवं उन्नयन में बाधक समझता है और उनका विरोध करता है।

जैन समाज में तद्विषयक भ्रांति के रूढ़ हो जाने में कतिपय ऐतिहासिक परिस्थितियों तथा विपरीत मान्यता वाले बहुसंख्यक समुदाय के निकट सम्पर्क के अतिरिक्त, दो कारण प्रमुख प्रतीत होते हैं। एक तो यह कि वर्ण-जाति, कुल, गोत्र में से प्रत्येक शब्द के कई-कई अर्थ हैं। जिनागम में कर्म सिद्धान्त के अनुसार उनमें से प्रत्येक का जो अर्थ है, वह लोक व्यवहार में प्रचलित अर्थ से भिन्न और विलक्षण

है। दोनों को अभिन्न मान लेने से भ्रान्त धारणाएं बन जाती हैं। दूसरे, जो लौकिक, सामाजिक या व्यवहार धर्म है, वह परिस्थितिजन्य है, और देश-कालानुसार परिवर्तनीय अथवा संशोधनीय है। इस स्थूल तथ्य को भूलकर उसे जिनधर्म, आत्मधर्म, निश्चयधर्म या मोक्षमार्ग, जो शाश्वत एवं अपरिवर्तनीय है, से अभिन्न समझ लिया जाता है। पक्षव्यामोह एवं कदाग्रह से मुक्त होकर भ्रान्ति के जनक इन दोनों कारणों को जिन धर्म की प्रकृति, उसके सिद्धांत, तत्वज्ञान एवं मौलिक परम्परा के प्रतिपादक प्राचीन प्रामाणिक शास्त्रों के आलोक में भली-भांति समझकर प्रकृत विषय के सम्बन्ध में निर्णय करना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि लौकिक, सामाजिक या व्यवहार धर्म को सर्वथा नकार दिया जाय। वैसा करना न सम्भव ही है और न हितकर ही। परन्तु उसमें युगानुसारी तथा क्षेत्रानुसारी आवश्यक एवं समुचित परिवर्तन, संशोधनादि करने में भी संकोच नहीं करना चाहिए। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अतएव व्यावहारिक, सामाजिक या लौकिक धर्म की व्यवस्थाएं, संस्थाएं और प्रथाएं रहेंगी ही, उनका रहना अपेक्षित भी है, किन्तु वे ऐसी हों जो सम्यक्त्व को दूषित करने वाली न हों, बरन् उसकी पोषक हों, - मोक्षमार्ग में साधक हों, बाधक न हों।

१८५७ ई. के स्वातन्त्र्य-समर के उपरान्त जब इस महादेश पर विदेशी अंग्रेजी शासन सुव्यवस्थित हो गया तो प्रायः सम्पूर्ण देश में नवजागृति एवं अभ्युत्थान की एक अभूतपूर्व लहर शनैः शनैः व्याप्त होने लगी, जिससे जैन समाज भी अप्रभावित न रह सका। फलस्वरूप लगभग १८७५ से १९२५ ई. के पचास वर्षों में धर्मप्रचार एवं शिक्षा-प्रचार के साथ-साथ समाज सुधार के भी अनेक आन्दोलन और अभियान चले। धर्म शास्त्रों का मुद्रण-प्रकाशन, धार्मिक व लौकिक शिक्षालयों तथा परीक्षा बोर्डों की स्थापना, स्त्रीजाति का उद्धार, कुरीतियों के निवारण का उद्घोष, कई अखिल भारतीय सुधारवादी संगठनों का उदय, धार्मिक-सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आदि उन्हीं आंदोलनों के परिणाम थे। जातिप्रथा की कुरीतियों एवं हानियों पर तथाकथित बाबू पार्टी अर्थात् आधुनिक शिक्षा प्राप्त सुधारक वर्ग ने ही नहीं तथाकथित पंडित दल के गुरु गोपालदास बरैया जैसे महारथियों ने भी आवाज उठाई। बा. सूरजभान वकील, पं. नाथूराम प्रेमी, ब्र. सीतलप्रसाद, आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार प्रभृति अनेक शास्त्रज्ञ सुधारकों ने उस अभियान में प्रभूत योग दिया। अनेक पुस्तकें एवं लेखादि लिखे गये। मुख्तार साहब की पुस्तकें- जिन पूजाधिकार मीमांसा, शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण, जैन धर्म सर्वोदय तीर्थ है, ग्रन्थ-परीक्षा आदि,

पं. दरबारीलाल सत्यभक्त की **विजातीय विवाह मीमांसा**, बा. जयभगवान की **वीर शासन की उदारता**, पं. परमेष्ठीदास की **जैन धर्म की उदारता**, पं. फूलचन्द्र शास्त्री की **जाति-वर्ण और धर्म मीमांसा** जैसी अनेक पुस्तकें तथा विभिन्न लेखकों के सैकड़ों लेख प्रकाशित हुए और सुधारवादी नेताओं के जोशीले मंचीय भाषणों ने समाज को भरपूर झकझोरा। फलस्वरूप समाज में विचार परिवर्तन भी होने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति (१९४७ ई.) के उपरान्त आधुनिक युग की नई परिस्थितियों में उसमें और अधिक वेग आया। प्रतिक्रियावादियों के भरपूर प्रयत्नों के बावजूद आज का जनमानस सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक शिथिलाचार के प्रति सजग हो गया है, और व्यवहार में जाति-पांति के पुराने बंधन बहुत ढीले पड़ते जाते हैं। वस्तुतः आज तो विश्वमानस अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, प्रदेशीय, सामाजिक, साम्प्रदायिक प्रायः सभी स्तरों पर जातिवाद के भेदपरक एवं पृथकतावादी दूषणों का विरोधी हो उठा है। यह समय की मांग है।

वस्तुतः धर्म तो मनुष्यों को जोड़ने के लिए है, तोड़ने के लिए नहीं, जबकि प्रचलित जाति-उपजातिवाद एक ही धर्म के अनुयायियों में और एक ही राष्ट्र के नागरिकों में परस्पर फूट डालकर विघटन का पोषण करता है। जैन सिद्धान्त के अनुसार तो सभी मनुष्यों की एक ही जाति अर्थात् जाति, नाम, कर्म के उदय से होने वाली मनुष्य जाति है। प्रचलित जाति-उपजातियां परिस्थिति-जन्य हैं, मनुष्यकृत हैं, कृत्रिम और काल्पनिक हैं- वे प्राकृतिक या शाश्वत नहीं हैं। अनेक प्राचीन जातियां समय के गर्भ में विलीन हो गयीं या अन्य जातियों में अन्तर्भुक्त हो गईं, और अनेक नवीन जातियां-उपजातियां उत्पन्न होती रही हैं। अतएव धार्मिक दृष्टि से व्यक्ति और समष्टि के हित में, कम से कम समस्त साधर्मी जन तो उक्त भेदभावों से ऊपर उठकर अपने संगठन को अखण्ड एवं सौहार्दपूर्ण बनाये रक्खें, यह आवश्यक है। तीर्थंकर नाम सर्वातिशय पुण्यप्रकृति के आस्रव एवं बन्ध की कारण सोलह-भावनाओं में परिगणित साधर्मी-वात्सल्य भावना का महत्व इसी दृष्टि से आंकना उचित होगा।

रागी नर

निज स्वरूप को भूल नर, राग रंग में लीन।
धर्म कथा रुचती नहीं, कामकथा तल्लीन।।
कामकथा तल्लीन, रामकथा न तनिक सुहावै।
रहे विषय आधीन, औरन को तहाँ फंसावै।।
स्वयं धर्म कर्म ना करै, करन नहीं देता जो पर।
कहैं बिहारीलाल कवि, निज स्वरूप को भूला नर।।

निर्वाण महोत्सव एवं श्रद्धांजलि पर्व - दीपावली

- श्री अजित प्रसाद जैन

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के ६८० वर्ष उपरान्त (४५३ ई. में) वल्लभी (महाराष्ट्र प्रदेश) में जुड़े मुनि सम्मेलन में सम्पन्न हुई **सुत्तागम** की अन्तिम वाचना के आधार पर देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण द्वारा संकलित एवं लिपिबद्ध किए गए अवशिष्ट आगम साहित्य में एक ग्रंथ **"कल्पसूत्र"** भी है जो अन्तिम श्रुतकेवली भगवन्त भद्रबाहु स्वामी (ई.पू. ४थी शताब्दी) कृत माना जाता है। अर्द्धमागधी भाषा में निबद्ध इस ग्रंथ में वीर प्रभु के निर्वाण महोत्सव एवं उसके निमित्त से दीपमालिका पर्व मनाए जाने का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अनुसार -

"भगवान का अन्तिम चातुर्मास पावानगरी में हुआ। इस चातुर्मास में कार्तिक मास की अमावस्या के दिन जो अन्तिम रात्रि थी उस रात्रि को श्रमण भगवान महावीर ने कालधर्म को प्राप्त किया - उस रात्रि में नव मल्ल जाति के काशी देश के राजा तथा नव लिच्छवी जाति के कौशल देश के **राजाओं का किसी कारणवश वहां सम्मिलन था।...उन्होंने इस अमावस्या के दिन...उपवास पोषध किया हुआ था। अब संसार से ज्ञान-उद्योत चला गया, अतः अब द्रव्य-उद्योत करेंगे, यह विचार कर उन्होंने दीपक जलाए। उस दिन से दिवाली या दीपमालिका का महोत्सव प्रचलित हुआ।"**

दिगम्बर जैनाचार्य भगवज्जिनसेन स्वामी भी अपने संस्कृत भाषा के महाकाव्य **'हरिवंश पुराण'** (रचना ७८३ ई.) में भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष गमन की अलौकिक घटना का वर्णन करते हुए लिखते हैं -

"भगवान महावीर निरन्तर सब ओर के भव्य समूह को संबोधकर पावानगरी पहुंचे-- जब चतुर्थ काल के तीन वर्ष आठ मास व पन्द्रह दिन शेष रह गए तब स्वाति नक्षत्र में कार्तिक अमावस्या के सुप्रभात में, रात्रि एवं दिन के संधिकाल में स्वभाव से ही योग निरोध कर, घातिया कर्म रूप ईंधन के समान अघातिया कर्मों... को भी नष्ट कर, बंधन रहित हुए, संसार के प्राणियों को सुख उपजाते हुए निरन्तराय तथा विशाल सुख से सहित निर्बन्ध मोक्ष पद को प्राप्त हुए, - - भगवान महावीर के निर्वाण के समय चारों निकायों के देवों ने विधिपूर्वक उनके शरीर की पूजा की। **उस समय सुर और असुरों के द्वारा जलायी हुई बहुत भारी देदीप्यमान दीपकों की पंक्ति से**

पावानगरी का आकाश सब ओर से जगमगा उठा। (वहां उपस्थित) राजाओं ने भी प्रजा के साथ मिलकर भगवान के निर्वाण कल्याणक की पूजा की-- उस समय से लेकर भगवान महावीर के निर्वाण कल्याणक की भक्ति संयुक्त संसार के प्राणी इस भरत क्षेत्र में प्रति वर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध 'दीपमालिका के द्वारा भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे अर्थात् उन्हीं की स्मृति में दीपावली मनाने लगे।"

जैन वाङ्मय में भगवान महावीर के निर्वाण महोत्सव तथा उनके निमित्त से दीपमालिका पर्व के ये सर्वाधिक प्राचीन उल्लेख उपलब्ध होते हैं तथा परवर्ती पुराणकारों-कथाकारों ने इन्हें ही अपनी रचनाओं का आधार बनाया है।

विक्रम की १६वीं-१७वीं शती के काष्ठासंघस्थ माथुरान्वय के पुष्करगण के यशस्वी भट्टारक यशःकीर्ति ने भी, जिन्हें परवर्ती विद्वानों ने उच्च कोटि के शास्त्र मर्मज्ञ साहित्यकार के रूप में स्मरण किया है, अपभ्रंश भाषा में भगवान महावीर की वंदना निम्न प्रकार की है-

"पावापुर मध्य मुक्तीश जिनेश्वर (वर्द्धमान महावीर) ने वेदनीय का उच्छेद कर, चौसठ कर्म प्रकृतियों का नाश कर सिद्ध के निवास को वास रूप में प्राप्त किया, उन देवाधिदेव की निर्वाण प्राप्ति के उपलक्ष में (कार्तिकी) अमावस्या को दिवाली मनी तथा चारों निकाय के देवों तथा मनुष्यों ने निर्वाण पूजा की।"

जैन धर्मावलम्बी भगवान महावीर के मोक्ष कल्याणक महोत्सव के निमित्त से दीपावली का पावन पर्व कार्तिक कृष्ण अमावस्या की रात्रि में दीपमालिका प्रज्ज्वलित कर भगवान को प्राप्त मोक्ष लक्ष्मी की तथा उसी दिन केवलज्ञान प्राप्तकर ज्ञान की ज्योति को अखंड प्रज्ज्वलित रखने वाले उनके प्रमुख गणधर गौतम गणेश की पूजा-अर्चना सहित बड़े हर्ष उल्लास, धार्मिकता एवं सात्विकता के साथ विगत साधिक ढाई सहस्त्र वर्षों से मनाते आ रहे हैं, जिसके ऐतिहासिक उल्लेख ई. पू. ३५० से तथा लिखित अभिलेख ४५३ ई. से आज भी उपलब्ध हैं। (इस पर्व पर जुआ खेलना या अन्य किसी भी व्यसन में लिप्त होना अथवा पटाखे आदि छोड़ने का हिंसा कार्य करना जैन संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध है)।

कई मध्ययुगीन मुसलमान विद्वानों ने [देखें अब्दुल रहमान मुलतान कृत 'सन्देश रासा' (अपभ्रंश), रचना १३०० ई., तथा अबुल फजल कृत 'आइन-ए-अकबरी' (फारसी), रचना १५९४ ई.] तथा महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, लोकमान्य बाल

गंगाधर तिलक, परिपूर्णानन्द वर्मा आदि अनेक प्रख्यात विद्वानों, साहित्यकारों एवं चिन्तकों ने भी दीपावली पर्व का प्रारंभ भगवान महावीर के मोक्ष गमन से जुड़ा स्वीकार किया है। कालान्तर में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ तथा गुरु गोविन्द सिंह जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं भी संयोगवश इस पर्व से जुड़ गईं।

एक बहुप्रचलित जनश्रुति के अनुसार भगवान रामचन्द्र ने लंकापति रावण का वध दशहरे के दिन कर विजय प्राप्त की थी तथा दीपावली के दिन उनका अयोध्या में प्रवेश और राज्याभिषेक हुआ था जिसकी खुशी अयोध्यावासियों ने दीपमालिका प्रज्ज्वलित कर मनाई थी। किन्तु इस जनश्रुति की पुष्टि रामकथा के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ ऋषि वाल्मीकि कृत **'रामायण'** या बहुमान्य गोस्वामी तुलसीदास कृत **'रामचरित मानस'** से नहीं होती। इनके अनुसार राम ने १३ दिन के दिन-रात के निरन्तर युद्ध के बाद चैत्र शुक्ल १४ को रावण का वध किया तथा उसकी अन्त्येष्टी कराकर व विभीषण को लंका के सिंहासन पर अभिषिक्त कराकर वे पुष्पक विमान द्वारा एक सप्ताह के भीतर ही वैशाख कृष्ण ५ को प्रयाग में भारद्वाज ऋषि के आश्रम पधार गए थे तथा अगले दिन ही अयोध्या में उनका भव्य स्वागत व राज्याभिषेक हुआ था। यह उल्लेखनीय है कि दीपावली को लक्ष्मी-गणेश की पूजा होती है पर भगवान राम की नहीं।

जैन धर्मावलंबियों द्वारा दीपावली पर्व को भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण महोत्सव के साथ इस अवसर्पिणी काल में आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के धर्मशासन से लेकर अन्तिम केवली भगवन्त जम्बू स्वामी पर्यन्त उन सभी महान आत्माओं के श्रद्धांजलि पर्व के रूप में भी मनाया जाता है जिन्होंने अपने परम पुरुषार्थ से निर्बन्ध हो संसार-सागर पार कर मोक्ष प्राप्त किया। उन सभी की तथा उनकी निर्वाण भूमियों की बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति के साथ वंदना की जाती है तथा दीप अर्पित किए जाते हैं।

जैन संस्कृति में उन महापुरुषों की निर्वाण तिथि को बड़े हर्ष और उल्लास के साथ मृत्यु महोत्सव के रूप में मनाने की परम्परा है जो कृत कृत्य होकर संसार के आवागमन से मुक्त हो गए और जिनका यह अन्तिम शरीर था।

विघटन श्रेयस्कर नहीं

- डॉ. शशि कान्त

इस देश भारत के मूल निवासी या बाशिंदे (Natives) विपुल रूप में बहुसंख्यक हिन्दू समुदाय का अंग हैं। यह समुदाय सामाजिक दृष्टि से उच्चवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) और अन्य वर्ण में विभाजित है। अन्य वर्ण के अंतर्गत सामाजिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग सम्मिलित हैं जैसे कि पिछड़ी जातियां जो प्रायः खेतिहर और कामगर लोगों की हैं, दलित वर्ग जिसके अंतर्गत अनुसूचित जातियां परिगणित होती हैं, और जन-जातियां (जो सूचीबद्ध भी हैं)। इन दोनों ही वर्गों में विभिन्न धार्मिक या पंथिक आस्थायें हैं, परन्तु जातिगत सामाजिक रीति-रिवाजों में सामान्यतः अंतर नहीं है। कुल-गोत्र आदि का बंधन या उसकी मान्यता और उसके अनुरूप रोटी-बेटी आदि का व्यवहार प्रायः सभी वर्गों में समान है।

ऐतिहासिक काल में ईस्वी सन् से ६००-७०० वर्ष पूर्व से सामाजिक असमानता के विरुद्ध जाति-श्रेष्ठता के विरोध में कई विचारकों ने सामाजिक समानता के लिए वैचारिक आंदोलन चलाये। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान बुद्ध का इसमें स्पृहणीय योगदान माना जाता है। जैन धर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर भी उनके समकालीन थे और उन्होंने भी भारतीय संस्कृति की प्राचीन काल से चली आ रही निवृत्तिमूलक श्रमण विचारधारा को परिपुष्ट करते हुए उस आंदोलन में अपना महती योगदान किया।

इस्लाम के आक्रामक स्वरूप से हिन्दू की रक्षा के लिए सिख धर्म का उदय हुआ। सिख का अर्थ है शिष्य। गुरु नानकदेव से गुरु गोविन्दसिंह तक दस गुरुओं ने जो गुरुबानी लिखी उसमें राम और कृष्ण तथा अन्य हिन्दू देवी-देवताओं की स्तुतियां प्रमुख हैं। गुरु गोविन्दसिंह जी ने १६९९ ई. में खालसा का संगठन किया, पांच कक्के (केश, कंघी, कड़ा, कच्छी और किरपाण) निर्धारित किए तथा सिखों का सैनिक संगठन इस्लामी ताकत का प्रतिरोध करने के लिए किया। ऐसी स्थिति में सिख समुदाय को हिन्दू समुदाय से पृथक् सूचित करना युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता।

हिन्दू समुदाय को बांटने की दुरभिसंधि आक्रमणकारी मुसलमान शासकों ने भी की थी परन्तु अंग्रेज शासकों ने इसे एक सुनियोजित व्यवस्था के रूप में लागू किया। १८५७ ई. के ग़दर में सिख रियासतों का साथ लेने के लिए अंग्रेजों ने सिखों के अलगाववाद का पोषण किया और पिछले १५० वर्षों में यह एक ऐतिहासिक सत्य-सा

बन गया। तथापि मास्टर तारासिंह को पाकिस्तान से अपमानित कर निष्कासित किये जाने से सिख समुदाय में सामान्यतः यह चेतना आयी कि उनका घर भी भारत या हिन्दुस्तान ही है, और वे वृहत् हिन्दू समाज से कहीं-न-कहीं जुड़े हैं।

जैन धर्मावलम्बी भी सामाजिक दृष्टि से वृहत् हिन्दू समाज से अलग नहीं हैं, यद्यपि उनके धार्मिक आचार-विचार, मान्यतायें और आस्थायें सनातन हिन्दू धर्म या वेदनिष्ठ धार्मिक परम्पराओं से स्वतंत्र हैं और पृथक् अस्तित्व रखती हैं।

बौद्ध धर्मावलम्बी प्रायः दलित वर्ग या पिछड़ी जातियों में हैं। पिछले लगभग सौ वर्षों में बौद्ध धर्म का पुनः प्रचार हुआ है। बौद्ध धर्म में दीक्षित जातियों का सामाजिक आधार अपनी जातियों से बाहर नहीं के बराबर है।

प्रख्यात विधिवेत्ता श्री कैलाशनाथ गोयल (पूर्व विधि परामर्शी एवं न्याय सचिव, उत्तर प्रदेश; न्यायाधीश, इलाहाबाद उच्च न्यायालय; लोकायुक्त; और अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश विधि आयोग) ने Hindustan Times में दिनांक ६/१/२००३ को प्रकाशित अपने विवेचन में **हिन्दू की तथा उसके संदर्भ से अल्पसंख्यक की विधिक स्थिति** पर प्रकाश डाला है। उसके मूल अंशों का सारांश नीचे दिया जा रहा है:

'जब अंग्रेजों ने भारत में न्याय व्यवस्था की स्थापना की तो इस देश में संविदा, सम्पत्ति हस्तांतरण, ट्रार्ट्स तथा दण्ड विधान आदि के लिए कोई विधि संहिता नहीं थी। अतः गवर्नर जनरल ने बंगाल रेगुलेशन द्वारा यह व्यवस्था की कि विवाह, अभिभावकत्व, गोद लिये जाने, गुजारा दिये जाने, उत्तराधिकार और विरासत के मामलों को न्यायालय हिन्दू और मुसलमानों के विधि-विधानों के अनुसार निर्णीत करें। इन मामलों में न्यायाधीश, जो हाईकोर्ट जज और जिला जज के पदों पर प्रायः अंग्रेज ही होते थे, के लिए पंडितों और मौलवियों से परामर्श करना अपेक्षित था जब कि अन्य मामलों में वे न्यायबुद्धि से स्वयं निर्णय लेने के लिए सक्षम थे। हिन्दू विधि और मुस्लिम कानून पर बहुत से ग्रन्थ और वाद थे, और इसीलिए कानून संबंधी अंतिम निर्णय लन्दन में स्थित प्रीवी काउन्सिल द्वारा किया जाता था।

उन्नीसवीं शताब्दी में प्रीवी काउन्सिल ने यह व्यवस्था दी थी कि हिन्दू विधि के संदर्भ में जैनों और सिखों को हिन्दू ही माना जायेगा। १९७२ में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भी चम्पाकुमारी के सम्पत्ति कर के विवाद में यह व्यवस्था दी थी कि एक जैन अविभाजित परिवार एक हिन्दू अविभाजित परिवार के समतुल्य माना जाये।

हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान की धारा २५ में सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलने का जो उपबंध किया है उसमें यह स्पष्ट किया है कि हिन्दू के अंतर्गत सिख, जैन या बौद्ध धर्म के मानने वाले व्यक्ति शामिल हैं। जब नेहरू जी और डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों से हिन्दू विधि के महत्वपूर्ण अंशों को संहिताबद्ध किया गया तो उन सब विधियों में भी संसद द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि ये सब विधियां सिखों, जैनों और बौद्धों पर भी समान रूप से लागू होंगी, तथा यह भी कि जब तक अन्यथा प्राविधानित न हो हिन्दू में प्रत्येक भारतीय सम्मिलित है अलावा एक मुसलमान, इसाई, यहूदी या पारसी के।

खालिस्तानी अलगाववादियों का सिखों के लिए अलग विधि के प्रचार का कोई प्रभाव नहीं हुआ। अलगाववादी जैन विधि का भी कोई प्रचार नहीं हुआ, वरन् जब अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष के रूप में प्रो. ताहिर महमूद ने जैनों को अल्पसंख्यक कहा तो इसे शंका की दृष्टि से देखा गया और यह प्रतिरोध भी किया गया कि प्रो. महमूद हिन्दुओं को विभाजित करने का दुष्प्रयत्न कर रहे हैं।

यह उल्लेखनीय है कि कहीं भी हिन्दू धर्म के मानने वालों का उल्लेख नहीं है बल्कि इसको अप्रत्यक्ष विलोपन की रीति से परिभाषित किया जाता है। न्यायमूर्ति वेंकटाचलैया ने १९९५ में सर्वोच्च न्यायालय में दिये गये अपने महत्वपूर्ण निर्णय में हिन्दू को अंततः परिभाषित करते हुए कहा है कि "जब हम हिन्दू धर्म की बात सोचते हैं तो हम हिन्दू धर्म को परिभाषित करना या पर्याप्त रूप से वर्णित करना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य पाते हैं। विश्व के अन्य धर्मों की भांति हिन्दू धर्म किसी एक पैगम्बर (Prophet) को नहीं मानता, किसी एक देव की पूजा नहीं करता, किसी एक सिद्धांत (Dogma) को नहीं मानता, किसी एक दार्शनिक चिंतन में विश्वास नहीं करता; वास्तव में किसी धर्म या मत के पारम्परिक स्वरूप से यह मेल नहीं खाता प्रतीत होता। इसे व्यापक रूप में जीवन पद्धति कहा जा सकता हे, और कुछ नहीं।'

डॉ. राधाकृष्णन ने The Hindu View of Life में कहा है कि हिन्दू सभ्यता इसलिए कही जाती है क्योंकि इसके मूल संस्थापक या प्राचीनतम प्रस्तोता

सिन्धु नदी से सिंचित प्रदेश में रहते थे। इस नदी के भारत की ओर रहने वाले लोगों को पुराने ईरानियों और भारत के पाश्चात्य आक्रमणकारियों ने हिन्दू कहा। यह आस्थाओं का एक संग्रहालय है, क्रियाकाण्डों का एक समुच्चय है, या मात्र एक मानचित्र है, एक भौगोलिक शब्द है। हिन्दू' शब्द का मूलतः क्षेत्रवर्ती (territorial) महत्व था, कोई धार्मिक मत संबंधी (creedal) महत्व नहीं। यह एक परिभाषित भौगोलिक क्षेत्र में निवास को सूचित करता था। आदिवासी जातियां, जंगली और अर्धसभ्य लोग, सुसंस्कृत द्रविड और वैदिक आर्य, सभी हिन्दू थे क्योंकि वे एक ही मां की संतान थे।

मोनियर-विलियम्स ने भी परिभाषित किया है कि हिन्दू धर्म हिन्दुओं के सम्मिलित स्वरूप को सूचित करता है, जो कि एक नहीं वरन् बहुत से जन-समुदाय हैं और उनका आधार सर्वव्यापी ग्राह्यता है। तीन हजार वर्षों से भी अधिक समय में यह परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलित होती रही।

१९७१ में पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा गुरमुखी लिपि में लिखित पंजाबी भाषा को शिक्षा का एकमात्र माध्यम बनाये जाने पर डी.ए.वी. कालेज, जलंधर, द्वारा हिन्दी भाषी आर्यसमाजियों के धारा २९ और ३० में प्रदत्त अल्पसंख्यकों के अधिकार को लेकर जब विवाद उठा तो सर्वोच्च न्यायालय ने यह विवेचना दी कि यद्यपि धारा २५ के अनुसार और पर्सलन लॉ के संदर्भ में सिख हिन्दुओं का अंग हैं, परन्तु सिख बहुल राज्य में हिन्दुओं को धारा २९ और ३० के अनुसार एक धार्मिक एवं भाषायिक अल्पसंख्यक माना जाये। धारा २९ में भाषा और संस्कृति को संरक्षित रखने का अधिकार दिया गया है और धारा ३० में ऐसे अल्पसंख्यक समुदायों को अपनी शिक्षण-संस्थायें संचालित करने का अधिकार भी दिया गया है।

संविधान में और हिन्दू कोड अधिनियमों में जैनों को भी एक पृथक् धर्म के मानने वालों की मान्यता दी गयी है। यह मान्यता रामकृष्ण मिशन, इस्कान, आर्य समाज, राधा स्वामी आदि को नहीं दी गयी है।'

श्री गोयल के आधार से जो विवचेना ऊपर दी गयी है उससे यह स्पष्ट होगा कि हिन्दू धर्म जैसी कोई चीज नहीं है, Hinduism शब्द का प्रयोग वास्तव में अशुद्ध (misnomer) है। धर्म के रूप में या दर्शन एवं पूजा-पद्धति आदि के रूप में यदि परिगणना की जाये तो वैष्णव धर्म, शैव धर्म, शाक्त धर्म, वैदिक धर्म, या सनातन

धर्म, आदि का उल्लेख किया जाना उचित होगा क्योंकि ये सभी अपने विशिष्ट देव व दर्शन आदि से वैशिष्ट्य को प्राप्त हैं, परन्तु समग्र रूप से हिन्दू संज्ञा से जाने जाते हैं।

हिन्दू इस देश के रहने वाले लोगों का क्षेत्रगत सामुदायिक नाम है। इस देश की मूल संस्कृति से निःसृत सभी विचारधारायें, आस्थागत परम्परायें, दार्शनिक विवेचनायें, लोक संस्कृति की विविधतायें और सामाजिक जीवन की व्यवस्थायें, एक समग्र हिन्दू समुदाय को सूचित करते हैं। जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका है, जैन धर्म भारत की मौलिक स्वतंत्र धार्मिक परम्परा का प्रतिनिधि है। बौद्ध धर्म भी एक स्वतंत्र और मौलिक धार्मिक चिंतन का प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु सामाजिक दृष्टि से जैन, बौद्ध और सिख समुदाय वृहत् हिन्दू समुदाय से अलग नहीं किए जा सकते। धारा २९ और ३० के अन्तर्गत उन्हें आत्म-संरक्षण का पूर्ण अधिकार है और यह शासन द्वारा तथा जन-चेतना द्वारा पूर्णतः संरक्षित किया जाना चाहिए। परन्तु समग्र हिन्दू समुदाय से अल्पसंख्यक के रूप में अथवा किसी अन्य अलगाववादी इकाई के रूप में उनका अस्तित्व सुरक्षित नहीं रहेगा।

विगत एक हजार वर्ष का इतिहास जो कि प्रायः लोगों को मालूम है, यह स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है कि यदि भारत की मूल संस्कृति से जुड़े लोग, जो सामान्य रूप से हिन्दू के नाम से जाने जाते हैं, संघटित और संगठित नहीं होते हैं तो इस देश की सांस्कृतिक अस्मिता सुरक्षित नहीं रह पायेगी।

यह उल्लेखनीय है कि जब-जब पाकिस्तान और बांगलादेश से हिन्दुओं को विस्थापित किया गया तो उसमें सिख, जैन, बौद्ध, दलित आदि को अल्पसंख्यक के वैशिष्ट्य के आधार पर कोई रियायत नहीं दी गयी। पाश्चात्य देशों में भी 'इंडियन कम्यूनिटी' के अन्तर्गत समग्र हिन्दू समुदाय को ही सामान्यतः सूचित किया जाता है और उनकी पृथक् अल्पसंख्यक वाली आइडेन्टिटी को मान्यता नहीं दी जाती। हर अल्पसंख्यक समुदाय भी आपस में बहुत बंटा हुआ है और अल्पसंख्यकवाद उन समुदायों में बहुत से छोटे-छोटे अलगाववादी समूह पैदा कर सकता है जो सिखों, जैनों, दलितों, आदि की पहचान को भी खतरे में डाल सकता है।

हिन्दू समुदाय के विभिन्न वर्गों को यह स्पष्ट चिंतन करना आवश्यक है कि बहुल संख्या वाले समाज/समूह उन समाजों की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने का पूर्ण आश्वासन दें जो अल्पसंख्या में हैं। विकल्प यह नहीं होना चाहिए कि हिन्दू समुदाय

छोटे-छोटे समूहों में अल्पसंख्यकवाद के नाम पर विघटित हो जाये और दूसरों के बहकावे में आकर एक-एक कर छोटे समूह बिल्कुल ही मिट जायें।

सिख, जैन, बौद्ध, और वृहत् हिन्दू समुदाय में बहुत से प्रबुद्ध विचारक हैं जो अपने-अपने समुदायों को अलगाववादी प्रवृत्तियों से सावधान करने और हिन्दू को एक संघटित स्वरूप प्रदान करने की दिशा में समयोचित एवं सशक्त सोच दे सकते हैं। यह सोच राष्ट्रवादी होगी और किसी संकीर्ण पंथिक/साम्प्रदायिक संकीर्णता एवं उन्माद से सचेत करने वाली होगी। इस प्रकार की राष्ट्रीय सोच के अनुरूप प्रत्यक्षतः हिन्दू सम्प्रदायवादी संगठनों यथा विश्व हिन्दू परिषद, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, आदि द्वारा भी अपनी विचारधारा में आवश्यक संशोधन किया जाना अपेक्षित है ताकि वे एक समग्र राष्ट्रीय स्वरूप का प्रतिनिधित्व कर सकें।

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

सामयिक परिदृश्य

क्षणिकाएं

संथारा लिया वृद्ध महिला ने, उसका शोर यहाँ मचा खूब।
कितना उचित, कितना अनुचित यह, चर्चा में मीडिया गया डूब।।
सास-पीड़ित बहुओं के हाथ लगा क्या खूब अमोघ उपाय।
भारी लगें जब सास जी, संथारा ही उन्हें दो सुझाय।।१।।

◆◆ ◆◆ ◆◆

नेतागिरी चमकाने को अलगाववाद सहारा हो गया।
स्व सीमा कर संकुचित खाक आशियाना हो गया।।२।।

◆◆ ◆◆ ◆◆

एक दूजे पर कीचड़ उछालना धर्म हो गया है।
ऐसा करने में साधू भी बेशर्म हो गया है।।३।।

- रमा कान्त जैन

संस्कृत में जैन स्तोत्र-साहित्य

- डॉ. (कु.) मालती जैन

यद्यपि जैन दर्शन ईश्वर को सृष्टि के सृजनकर्ता, पालनहार एवं संहारक के रूप में स्वीकार नहीं करता तथापि जैन आचार्यों ने जिनभक्ति से संबंधित साहित्य की संरचना प्रचुर मात्रा में की है। वे स्वीकार करते हैं - 'सा जिव्हा या जिनं स्तौति'। ईश्वर के स्तवन से पाप क्षणभर में उसी प्रकार विनष्ट हो जाते हैं जिस तरह सूर्य की किरणों से अंधकार नष्ट हो जाता है -

त्वत्संस्तवेन भव-संतति-सन्निवद्धं, पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्तलोकमलनीलमशेषमाशु, सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमंधकारम्।।

जैन साहित्य में जहाँ हमें ज्ञान और वैराग्य के गगनचुम्बी हिमालय की पर्वत श्रृंखलायें दृष्टिगत होती हैं वहीं भक्ति-भागीरथी की अजस्र धारा की कलकल ध्वनि भी श्रवणगत होती है। जैनाचार्यों ने अपने आराध्य देवों के चरण-कमलों में देववाणी संस्कृत के माध्यम से जिन भाव प्रसूनों को समर्पित किया है उनमें स्तोत्र-साहित्य का विशिष्ट महत्व है। 'स्तोत्र' शब्द अदादिगण की उभयपदी 'स्तु' धातु से 'ष्ट्रन' प्रत्यय का निष्पन्न रूप है जिसका अर्थ गुण-संकीर्तन है। गुण-संकीर्तन आराधक द्वारा आराध्य की भक्ति का एक प्रकार है और यह भक्ति विशुद्ध भावना होने पर भवनाशिनी होती है। वादीभसूरि ने **क्षत्रचूड़ामणि** नीतिमहाकाव्य के मंगलाचरण में भक्ति को मुक्ति कन्या के पाणिग्रहण का शुल्क रूप कहा है -

श्रीपतिर्भगवान पुण्याद भक्तानां वः समाहितं।
यद्भक्ति शुल्कतामेति मुक्ति कन्या करग्रहे।।

स्तुति काव्य की दृष्टि से जैन वाङ्गमय बहुत विशाल, समृद्ध तथा वैविध्यपूर्ण है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, मराठी, राजस्थानी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में तीर्थंकरों के बहुविध स्तोत्र काव्य सैकड़ों की संख्या में विद्यमान हैं। तीर्थंकर महावीर के प्रधान गणधर इन्द्रभूति गौतम ने अर्द्धमागधी भाषा में भावपूर्ण स्तोत्र की रचना की थी। आचार्य भद्रबाहु के **उवसग्गहर स्तोत्र** का उल्लेख भी प्राप्त होता है। आचार्य कुन्दकन्द की भक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। विशेषकर संस्कृत भाषा के जैन स्तोत्र तो भक्ति साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं। ज्ञात एवं उपलब्ध स्तोत्रकारों एवं स्तोत्रों में निम्नलिखित प्रमुख हैं -

१. स्वामी समन्तभद्र - २रीं शती ई. - **स्वयंभू स्तोत्र, देवागम, जिन स्तुति शतक**
२. पूज्यपाद - ५वीं शती ई. - **सरस्वती स्तोत्र, शान्त्यष्टक, दशभक्तिः**
३. पात्रकेशरि स्वामी - ६ठीं शताब्दी ई. - **पात्रकेशरि स्तोत्र**
४. मानतुंग - ७वीं शती ई. - **भक्तामर स्तोत्र**
५. धनंजय - ७वीं शती ई. - **विषापहार स्तोत्र**
६. बप्पभट्टि - ८वीं शती ई. - **सरस्वती स्तोत्र**
७. विद्यानंद - ८वीं शती ई. - **श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्र**
८. जिनसेन स्वामी - नवी शती ई. - **श्री जिनसहस्रनाम स्तोत्र**
९. अमितगति - ९७५-१०२० ई. - **भावना द्वित्रिंशिका**
१०. वादिराज -१०२५ ई.-**एकीभाव स्तोत्र, ज्ञानलोचन स्तोत्र, अध्यात्माष्टक स्तोत्र**
११. मल्लिषेण - १०४७ ई.- **ऋषिमंडल स्तोत्र, पद्मावती स्तोत्र**
१२. इन्द्रनंदि -१०५० ई.- **पार्श्वनाथ स्तोत्र**
१३. हेमचन्द्राचार्य - ११०९-७२ ई.- **वीतराग स्तोत्र, महादेव स्तोत्र**
१४. जिनदत्त सूरि - ११२५ ई.- **विघ्नविनाशि स्तोत्र, स्वार्थाधिष्ठायि स्तोत्र**
१५. कुमुदचन्द्राचार्य - ११२५ ई.- **कल्याणमंदिर स्तोत्र**
१६. विष्णुसेन -११५० ई.- **समवशरण स्तोत्र**
१७. विद्यानंदि -११८१ ई.- **पार्श्वनाथ स्तोत्र**
१८. आशाधर -१२००-१२५० ई.- **सिद्धगुण स्तोत्र, सरस्वती स्तोत्र, जिनसहस्रनाम स्तवन**
१९. सोमदेव -१२०५ ई.- **चिन्तामणि स्तवन**
२०. वाग्भट्ट - १२५० ई.- **सुप्रबोधन स्तोत्र**
२१. रत्नकीर्ति - १२७५ ई. - **शम्भू स्तोत्र**
२२. शुभचन्द्र अध्यात्मि - १३१३ ई.- **मदालसा स्तोत्र**
२३. भट्टारक सकलकीर्ति -१५वीं शती ई.- **जिनसहस्रनाम, अर्हन्नाम**
२४. देवविजयगणि -१६वीं शती ई.- **जिनसहस्रनाम**
२५. विनय विजय -१७वीं शताब्दी ई.- **जिनसहस्रनाम**
२६. भागचन्द्र 'भागेन्दु' -१९वीं शताब्दी ई.- **महावीराष्टक**
२७. गणिनी आर्यिका ज्ञानमती- २०वीं शताब्दी ई.- **बाहुबलि स्तोत्र, सुप्रभात स्तोत्र, कल्याण कल्पतरु स्तोत्र**

उपरोक्त सूची से स्पष्ट है कि स्तोत्र साहित्य में **'जिनसहस्रनाम स्तोत्र'** की संख्या सर्वाधिक है। एकाकी तीर्थंकरों में ऋषभनाथ, चन्द्रप्रभु, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के स्तोत्र ही मुख्यतया रचे गये। तीर्थंकरों के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं में सरस्वती स्तोत्रों की प्रथा ४थीं - ५वीं शतीं से प्राप्त होने लगती है और १०वीं शती से चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती आदि विशिष्ट प्रभावशाली शासनदेवियों के स्तोत्र रचे जाने लगे। कई स्तोत्र मंत्रपूत माने जाते रहे हैं। अतएव उनके साथ सम्बद्ध चमत्कारों की आख्यायिकायें भी लोक प्रसिद्ध हुईं। ऐसे चमत्कारी स्तोत्रों में समन्तभद्र का **'स्वयंभू स्तोत्र'**, पूज्यपाद का **'शान्त्यष्टक'**, पात्रकेशरी का **'पात्रकेशरि स्तोत्र'**, आचार्य मानतुंग का **'भक्तामर स्तोत्र'**, धनंजय का **'विषापहार'**, वादिराज का **'एकीभाव'**, मल्लिषेण का **'ऋषिमंडल'** तथा कुमुदचंद्र का **'कल्याण मंदिर'** उल्लेखनीय हैं।

जैन स्तोत्र साहित्य के अध्ययन से एक तथ्य स्पष्ट है कि यद्यपि कतिपय स्तोत्रों में दार्शनिकता, आध्यात्मिकता तथा हितोपदेशिकता का प्रभाव परिलक्षित होता है, किन्तु अधिकांश स्तोत्र भक्तिपरक हैं। इन स्तोत्रों में भक्त का विनम्र आत्म निवेदन, पूर्ण समर्पण एवं आराध्यदेव के गुण संकीर्तन की भावोर्मियां प्रबल वेग से उद्वेलित हैं। शिल्प विधान की दृष्टि से भी ये स्तोत्र उच्च कोटि के हैं। भाषा का भावानुकूल प्रयोग, सार्थक अलंकार योजना, रसानुकूल छंद-विधान रचनाकारों के काव्य कौशल का प्रत्यक्ष प्रमाण है। धर्मनिष्ठ होने से जहाँ एक ओर ये स्तोत्र प्रत्यक्ष रूप से सदाचार, अहिंसा, भक्ति आदि के माध्यम से श्रेय के साधक हैं वहीं दूसरी ओर काव्य सरणि का अवलम्बन लेने से प्रेय अर्थात् सद्यः आनंद प्राप्ति में भी सहायक हैं।

विस्तारभय से समस्त प्रमुख स्तोत्रों का विवेचन करना तो संभव नहीं है तथापिं कतिपय बहुप्रचलित स्तोत्रों की मनोरम झाँकी यहाँ प्रस्तुत है।

भक्तामर स्तोत्र -

श्री मानतुंगाचार्य द्वारा विरचित **भक्तामर स्तोत्र** जैन समाज में सर्वाधिक प्रचलित स्तोत्र है। अशिक्षित भक्तों को भी यह स्तोत्र कंठस्थ है और वे प्रतिदिन इस स्तोत्र का पाठ करके ही अपने दिन का शुभारम्भ करते हैं। कहा जाता है कि राजा भोज ने आचार्य मानतुंग के स्वाभिमानी व्यक्तित्व से असंतुष्ट होकर उन्हें कारागार में बंदी बनाकर अड़तालीस ताले लगवा दिए थे। आचार्यश्री ने शांत भाव से इस उपसर्ग को सहन करते हुए कारागार में ही प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ की स्तुति में ४८ श्लोकों

की रचना की। निश्छल भक्ति के प्रभाव से स्तोत्र का पाठ करते ही ४८ ताले टूट गये। आचार्यश्री बंधनमुक्त होकर कारागार से बाहर आ गये। इस स्तोत्र की भाव भूमि तीन भागों में विभक्त की जा सकती है - भक्त का विनम्र समर्पण, आराध्य देव का समवशरण वैभव और समस्त आधि-व्याधि से मुक्ति की प्रार्थना। यथास्थान अलंकारों के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति सशक्त एवं मर्मस्पर्शी हो गई है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास धाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चारु आम्रकलिका-निकरैक हेतुः।।६।।

विषापहार स्तोत्र -

महाकवि धनंजय रचित **विषापहार स्तोत्र** भी चमत्कारी स्तोत्र है। मंदिर में पूजा में लीन कविराज धनंजय के पुत्र को सर्प ने डस लिया। घर से कई बार समाचार आने पर भी कविराज पूजन से विरत नहीं हुए। पत्नी ने कुपित होकर बच्चे को मंदिर में उनके सामने रख दिया। पूजन से निवृत्त होकर कवि ने भगवान के सम्मुख ही **विषापहार स्तोत्र** की रचना की। स्तोत्र पूरा होते होते बालक निर्विष हो उठकर बैठ गया। 'मंदाक्रान्ता छंद' में निबद्ध चालीस श्लोकों में कवि तीर्थंकर ऋषभनाथ की स्तुति करता है लेकिन कोई याचना नहीं करता। भक्ति निष्काम होनी चाहिए। फल तो स्वयमेव प्राप्त होगा। निष्काम भक्ति के महत्व-वर्णन में कवि का उक्ति-वैचित्र्य दृष्टव्य है -

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्
वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्
कश्छायया याचितयात्मलाभः।।३८।।

कल्याण मंदिर स्तोत्र -

श्री कुमुदचन्द्राचार्य द्वारा विरचित **कल्याण मंदिर स्तोत्र** भक्तों का कंठहार है। पार्श्वनाथ की स्तुति होने के कारण इसका नाम 'पार्श्वनाथ स्तोत्र' भी है। परन्तु 'कल्याण मंदिर' शब्दों से प्रारंभ होने के कारण इस स्तोत्र को इसी नाम से अभिहित किया जाता है। कहा जाता है कि उज्जयिनी में वाद-विवाद में इस स्तोत्र के प्रभाव

से एक अन्य देव की मूर्ति से पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट हो गई थी। ४४ श्लोकों में निबद्ध यह स्तोत्र 'बसन्ततिलका' छंद में लिखा गया है। स्तोत्र का प्रमुख आकर्षण भगवान पार्श्वनाथ के जन्म-जन्मान्तर के बैरी कमठ द्वारा उन पर किए गये भयंकर उपसर्ग के जीवन्त शब्दचित्र हैं-

यद्गर्जदूर्जित-घनौघमदभ्र-भीम
भ्रश्यत्तडिन्मुसल-मांसल-घोरधारम्।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर-वारि दध्रे।
तेनैव तस्य जिन दुस्तर-वारि कृत्यम्।।३२।।

उपयुक्त शब्दों के चयन से भयानक रस की निष्पत्ति करने में कवि सफल हुआ है।

एकीभाव स्तोत्र -

संस्कृत के जैन स्तोत्रकारों में आचार्य वादिराज का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वादिराज नाम नहीं वरन् पदवी है। चालुक्यराज जयसिंह की राजसभा में आपका विशिष्ट सम्मान था। कहा जाता है कि निस्पृही आचार्य ध्यान में लीन थे। कुछ व्यक्तियों ने उन्हें कुष्ठग्रस्त देखकर राजसभा में जैन मुनियों का उपहास किया जिसे जैन धर्म प्रेमी श्रेष्ठिजन सहन नहीं कर सके। भावावेश में वे कह उठे, "हमारे मुनिराज की काया तो स्वर्ण के समान होती है।" राजा ने समस्त वृतान्त सुनकर आचार्य के दर्शन का विचार किया। श्रेष्ठियों ने आचार्य को समस्त वस्तुस्थिति से परिचित कराकर, उनसे धर्मरक्षा की प्रार्थना की। आचार्यश्री ने धर्म प्रभावना हेतु **एकीभाव स्तोत्र** की रचना की जिससे उनका शरीर वास्तव में स्वर्ण सदृश हो गया। राजा ने मुनिराज के दर्शन कर दुष्टों को दंड देने का संकल्प किया, किन्तु क्षमाशील आचार्य ने अपने शत्रुओं को भी राजा से क्षमा करवा दिया।

२६ श्लोकों में रचित **एकीभाव स्तोत्र** में कवि का भक्त हृदय अडिग विश्वास के साथ आराध्यदेव के चरणों में समर्पित है। निम्न श्लोक में भक्त हृदय की दृढ़ आस्था एवं अपार श्रद्धा भक्ति का सुंदर निदर्शन है-

जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा
प्राप्तैवेयं, तव नय-कथा स्फार-पीयूष-वापी।
तस्या मध्ये हिमकर-हिम-व्यूह-शीते नितान्तं
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख-दावोपतापाः।।६।।

स्वयंभू स्तोत्र -

आचार्य समन्तभद्र की अमर कृति **'स्वयंभू स्तोत्र'** जैन वाङ्मय का दैदीप्यमान रत्न है। १४४ श्लोकों में कवि ने चौबीस तीर्थंकरों का क्रम से पृथक्-पृथक् यशोगान किया है। कवि ने तीर्थंकरों की भक्त वत्सलता, उनके अपार गुण समूह और गहन ज्ञान का गुणगान तो किया ही है, उसकी दृष्टि तीर्थंकरों के दिव्य शारीरिक सौन्दर्य पर भी रीझी है। श्री चंद्रप्रभु भगवान के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है -

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं
चन्द्र द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवंद्यं महतामृषीन्द्रं
जिनं जितस्वान्तकषायबंधम्।।३६।।

इस स्तोत्र के साथ भी एक चमत्कारिक आख्यायिका सम्बद्ध है। मुनिवर से शिवपिंडी को नमस्कार करने का दुराग्रह किया गया। अपने आराध्य के प्रति अटूट श्रद्धा के कारण उनके लिए यह संभव नहीं था। उन्होंने संकट की इस घड़ी में चौबीस तीर्थंकरों का स्मरण करते हुए **स्वयंभू स्तोत्र** की रचना की। स्तोत्र में चन्द्रप्रभु भगवान की स्तुति पढ़ते-पढ़ते जैसे वे शिवलिंग को नमस्कार करने को आगे बढ़े शिवपिंडी फट गई और उसके भीतर चन्द्रप्रभु की भव्य प्रतिमा प्रकट हुई। ऐसी घटना हमें 'तुलसी मस्तक तब नवै धनुषवाण लेहु हाथ' का स्मरण करा देती है।

महावीराष्टक स्तोत्र -

वर्तमान समय में कविवर भागचंद्र (१९वीं शती ईस्वी) की कृति **'महावीराष्टक स्तोत्र'** जैन समाज में बहुप्रचलित स्तोत्र है। ९ 'शिखरिणी' छंदों में निबद्ध यह स्तोत्र भगवान महावीर की भावभीनी स्तुति है। भगवान महावीर के अलौकिक सौन्दर्य का आलंकारिक वर्णन इस स्तोत्र का विशिष्ट आकर्षण है। बाह्य सौन्दर्य वर्णन के साथ ही कवि ने भगवान की 'वाग्गंगा' में भी गहन अवगाहन किया है। वाग्गंगा का आलंकारिक शब्दचित्र देखें-

यदीया वाग्गंगा विविध नयकल्लोल विमला
वृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।९।। **(शेषांश पृष्ठ ८० पर)**

जैन पुराणों में आर्थिक इतिहास

- डॉ. जिनेन्द्र जैन

पूर्व मध्यकालीन भारतीय संस्कृति के सम्पूर्ण अध्ययन के लिए दिगम्बर जैन पुराण अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यह इतिहास के प्राथमिक स्रोत के रूप में बहुत उपयोगी हैं। अधिकांश इतिहासकार मानते हैं कि पूर्व मध्यकाल विकास की दृष्टि से ठहराव का समय था। लेकिन दिगम्बर जैन पुराण साहित्य के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि पूर्व मध्यकाल के प्रथम चरण में भारत पर्याप्त प्रगति पर था। कृषि उन्नत अवस्था में थी। विभिन्न तकनीक व विभिन्न खाद्यानों का उल्लेख प्राप्त होता है। व्यवसायिक गतिविधियाँ भी प्रगतिशील थीं। नैगम, संघ व श्रेणियाँ व्यापक स्तर पर कार्यशील थीं। प्रस्तुत लेख में **पद्म पुराण, हरिवंश पुराण, महापुराण** एवं **यशस्तिलक चम्पू काव्य** को विशेष रूप से सन्दर्भित किया गया है। आलोच्य पुराणों का रचनाकाल ७०० ईस्वी से दसवीं शताब्दी ईस्वी है। आचार्य रविषेण ने **पद्मपुराण** की रचना वीर निर्वाण संवत् १२०३ (६७६ ई. या विक्रम संवत् ७३३) में की। इसका ग्रन्थ में ही उल्लेख है।[1] **हरिवंश पुराण** की रचना जिनसेन सूरि पुन्नाट ने शक संवत् ७०५ (७८३ ई.) में की थी।[2] **महापुराण** की रचना दो भागों में की गई - **आदि पुराण** एवं **उत्तर पुराण**। **हरिवंश** के जिनसेन सूरि पुन्नाट से सर्वथा भिन्न एक अन्य आचार्य जिनसेन (७७०-८५० ई.), जो स्वामी वीरसेन (७१०-७९० ई.) के शिष्य थे, ने **आदि पुराण** एवं उनके शिष्य गुणभद्र ने उक्त पुराण पूर्ण करने के साथ ही **उत्तर पुराण** की रचना की। सम्पूर्ण **महापुराण** शक संवत् ८२० (८९८ ई.) में पूर्ण हुआ।[3] सोमदेवसूरि कृत **यशस्तिलक चम्पू** दसवीं शताब्दी ईस्वी की रचना है।

आर्थिक विचार : आलोच्य जैन साहित्य के परिशीलन से अर्थ की महत्ता, इसके उपार्जन के साधन, इसकी सुरक्षा एवं संवर्धन तथा समुचित भोगोपभोग पर प्रकाश पड़ता है। आलोच्य जैन पुराणों की समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनाचार्यों ने प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक इन दो प्रकार की परस्पर विरोधाभासी विचार धाराओं के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। जैन दर्शन मुख्यतया निवृत्तिमूलक है, किन्तु व्यावहारिक जीवन में जैन चिन्तकों एवं मनीषियों ने प्रवृत्ति मार्ग को निरुत्साहित नहीं किया। आर्थिक विचारों के अन्तर्गत उनका निर्देश धर्म का उल्लंघन न कर धन को कमाना, उसकी रक्षा करना, बढ़ाना और योग्य पात्रों को दान देना है। **आदि पुराण** के सिद्धांतानुसार वस्तु में उपयोगिता का सृजन करना ही वस्तुओं का उत्पादन है। जैन दर्शन के अनुसार मनुष्य न तो नई वस्तुओं का

निर्माण करता है और न ही किसी पुरानी वस्तु का विनाश करता है, वह केवल उपयोगिता का सृजन करता है। उपयोगिता के सृजन का नाम ही उत्पादन तथा उपभोग है। वस्तुओं की जैसे-जैसे उपयोगिता बढ़ती जाती है, उनका मूल्य भी वृद्धिंगत होता जाता है। मूल्य निर्धारण उपयोगिता के आधार पर ही किया जाता है। **आदिपुराणकार** ने रत्नों का उदाहरण देकर उपयोगितावाद को स्पष्ट किया है। रत्न तभी रत्न संज्ञा को प्राप्त होता है जब खान से निकलने के बाद उसमें उपयोगिता सृजित की जाती है। जैन दर्शन के अनुसार आर्थिक असमानता और आवश्यक वस्तुओं का अनुचित संग्रह समाज के जीवन को अस्त-व्यस्त करने वाला है। इसी के कारण शोषण होता है। आर्थिक असमानता को मिटाने का उपाय है - अपरिग्रह। परिग्रह के निरोध हेतु परिमाण व्रत सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। वस्तुओं के प्रति ममत्व भाव को ही परिग्रह कहा गया है। जैन धर्म के अनुसार अर्थार्जन धर्म संगत होना चाहिए, उसमें ममत्व न हो। जब ममत्व नहीं रहेगा तब उसे प्राप्त करने या रक्षण में अनुचित साधनों का उपयोग नहीं होगा, तभी वह व्यक्ति व समाज के लिए हितकर है।

भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था (ग्राम समुदाय की अवधारणा) : जैन पुराणों में पूर्व मध्यकालीन ग्राम्य संस्कृति का विहंगावलोकन प्रस्तुत किया गया है। पूर्व मध्यकाल में सामन्तवाद के प्रारम्भ से प्राचीन नगरों एवं व्यापार का पतन हुआ। आर्थिक गतिविधियों के केन्द्र नगर नष्ट हो गए। कृषि के लिए गांवों की ओर पलायन एवं प्रत्यावर्तन का दौर शुरू हुआ। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप आत्मनिर्भर ग्राम समुदाय अस्तित्व में आए। ग्राम समुदाय से आशय है कि ग्राम समुदाय के पास ऐसी प्रत्येक वस्तु होती थी जिसकी उसे आवश्यकता होती थी और बाहरी मामलों में वे लगभग स्वतंत्र थे। गाँव की अपनी प्रशासनिक, सांस्कृतिक, न्यायिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाएँ थीं। वाहन विनियम एवं सम्पर्क का अभाव था। ग्राम समुदाय की अवधारणा को प्रकाश में लाने का श्रेय ईस्ट इंडिया कम्पनी के राजस्व प्रशासकों को जाता है। उन्होंने सर्वप्रथम ग्राम समुदाय के अध्ययन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कार्यों के बारे में हाऊस ऑफ कामन्स की प्रवर समिति की रिपोर्ट (१८१०) में ग्राम समुदाय को एक "निगम" या "नगर" या "लघु गणराज्य" के रूप में माना गया है। सर चार्ल्स मेटकाफ, जेम्स मिल, स्टुअर्ट, सर हैनरी मैन आदि ने ग्राम समुदाय के बारे में अध्ययन किया है। बाद में राष्ट्रवादियों तथा प्राचीन भारत के इतिहासकारों ने ब्रिटिश लेखकों के दृष्टिकोण का समर्थन किया। कुछ इतिहासकार इस मत से स मत नहीं हैं कि प्राचीन

भारत के गाँव आत्मनिर्भर थे। जैन पुराणों से भारत के आत्मनिर्भर ग्राम समुदाय की प्राचीनता एवं उनका आत्मनिर्भर स्वरूप स्पष्ट होता है। **आदिपुराण** में वर्णित है कि गाँवों में कृषकों के साथ लोहार, नाई, दर्जी, धोबी, बढ़ई, राजगीर, चर्मकार, वैद्य, पंडित, सभी प्रकार का व्यवसाय करने वाले तथा क्षत्रिय आदि सभी वर्ण के व्यक्ति निवास करते थे। ये विविध व्यावसायिक व्यक्ति अपने-अपने पेशे के अनुसार काम करके गाँव की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे एवं गांवों को स्वावलम्बी बनाते थे। **आदिपुराण** (१६/१६८) में ग्राम-व्यवस्था के संबंध में "योगक्षेमानुचिन्तम्" पद आया है। इस पद का आशय यह है कि उपभोग योग्य समस्त वस्तुएँ गाँवों में उपलब्ध हो जाती थीं। अतः **आदिपुराण** में वर्णित ग्राम्य जीवन आत्मनिर्भर व जनतांत्रिक था। जैन पुराणों में कृषि की स्थिति का वर्णन भी प्राप्त होता है। 'कृषक' को कर्षक शब्द से संबोधित किया गया है। सिंचाई की दृष्टि से तीन प्रकार के क्षेत्रों का उल्लेख हुआ है। 'अदैव भावृत' ऐसा क्षेत्र है जिसमें नदी-नहरों आदि से सिंचाई होती थी। 'दैव भावृत' वह क्षेत्र कहलाते थे जिनमें वर्षा के जल से ही सिंचाई होती थी। जिस क्षेत्र में दोनों प्रकार से सिंचाई होती थी वह साधारण क्षेत्र थे। रहट को 'घटी यंत्र' कहा गया है। कूप, वापी एवं सरोवरों के अतिरिक्त नहरों का भी उल्लेख हुआ है। **आदिपुराण** में खरपतवार की समस्या का भी उल्लेख है। जैन पुराणों में निम्नलिखित अनाजों का उल्लेख मिलता है :- साढ़ी, चावल, कलम, ब्रीही, जौ, गेहूँ, काँगनी, सामा, कोदो, नीवार, बयने, तिल, अलसी, मसूर, सरसों, धनिया, जीरा, मूँग, उड़द, अरहर, रौजा, मौढ, चना, कुलथी, तैवरा कुलित्थ (कुलथी), कुसुम्भ, कपास, पुण्ड (पौड़ो), इक्षु (ईख), शरक। दस्तकारी एवं हस्त शिल्प व हस्तकौशल का विवरण भी प्राप्त होता है। चटाई निर्माता (कटादिकार), मुंज पादुका निर्माता, रस्सी-पंखा, माला, तेल, इत्र निर्माता, कुम्भकार, चित्रकार, लौहार, नापित (काश्यप), वस्त्रकार आदि शिल्प द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले प्रमुख थे। हाथी के दाँत एवं हड्डी से सिंहासन बनाने का उल्लेख **हरिवंशपुराण** में हुआ है। एक बहुत बड़ा वर्ग लोहे त्रपुस, ताहा, जस्ते, सीसे, काँसे, चाँदी, सोने, मणि, दंत, सींग, चर्म, वस्त्र, शंख और बल आदि से बहुमूल्य पात्र तैयार करने का कार्य करता था। कसेरे काँसे के बर्तन बनाते थे। पुलिन्द जाति हाथी दाँत का काम करती थी। बन्दरों की हड्डियों से लोग मालाएँ तैयार करते थे जो बच्चों के गले में पहनायी जाती थी। वस्त्र उद्योग में भी एक बहुत बड़ा वर्ग कार्यरत था। वस्त्र हेतु सूत कातना, कटाई, रंगाई, कढ़ाई आदि कार्यों में बहुसंख्यक लोगों को रोजगार प्राप्त था। वस्त्र निर्माण के साथ ही आभूषण बनाने का कार्य कुछ लोग करते थे। **महापुराण** में लिखा है कि नुपूर, बाजुबन्द, रूचिका, अंगद

आदि आभूषण बनाए जाते थे। जैन पुराणों में अनेक प्रकार की मणियों का उल्लेख मिलता है। अन्य उद्योग धन्धों में रंग बनाने एवं बर्तनों पर पालिश करने का कार्य था। एक वर्ग खनिज उद्योग में व्यस्त था। प्राचीनकाल में खानों का उद्योग महत्वपूर्ण माना जाता था। खानों में से लोहा, ताँबा, जस्ता, सीसा, चांदी, सोना, मणि, रत्न, लवण, उस, गेरू, हरताल, हिगुलक, मणसिल, सासग (पारा), सोडिय (सफेद मिट्टी) उपलब्ध होते थे।

वाणिज्य : पुराणों के रचना काल में भारत में व्यापार-वाणिज्य की स्थिति उन्नत थी। स्थानीय व्यापार के लिए हर वस्तु का प्रायः अपना-अपना बाजार होता था। केसर, कस्तूरी आदि सौगन्धियों का बाजार सम्पूर्ण बाजार के मध्य में होता था। **यशस्तिलक** के अध्ययन में गोकुलचन्द्र ने लिखा है कि व्यापार की बड़ी-बड़ी मण्डियाँ पैठास्थान कहलाती थीं। पैठास्थानों में व्यापारियों के लिये सब प्रकार की सुविधाओं का प्रबन्ध रहता था। यहाँ दूर-दूर तक के व्यापारी आकर अपना धंधा करते थे। सोमदेव ने पैठास्थान का सुन्दर वर्णन किया है। उस पैठास्थान में अलग-अलग अनेक कोठियाँ बनायी गयी थीं। सामान की सुरक्षा के लिए बड़ी-बड़ी खोड़ियाँ या स्टोरहाऊस थे। पोखरों के किनारे पशु धन की व्यवस्था थी। पानी व अन्न, ईंधन तथा यातायात के साधन सरलता से उपलब्ध थे। सारा पैठास्थान चार मील के घेरे में फैला था। चारों ओर से सुरक्षा का व्यापक प्रबन्ध था। नाना देशों के व्यापारी वहाँ व्यापार के लिए आते थे। सोमदेव ने लिखा है कि पैठास्थान की सुरक्षा की जिम्मेदारी सरकार की होनी चाहिए और क्षति होने पर राजकोष से उसकी पूर्ति की जाए। **यशस्तिलक** के विवरण से ज्ञात होता है कि पैठास्थान व्यापार के बहुत बड़े साधन थे और व्यापारिक समृद्धि में इन सबका महत्वपूर्ण योगदान था। समकालीन साहित्य **तिलक मंजरी, भविसयत कहा** तथा **त्रिषष्टिश्लाकापुरुषचरित** में वर्णन मिलता है कि वणिक मिलकर सब प्रकार की तैयारी करके व्यापार के लिए रवाना होते थे। इस समय केन्द्र में शक्तिशाली शासन न होने से मार्गों में सुरक्षा नहीं थी। चोर और डकैत लूट-खसोट करते थे। सामन्तों के पारस्परिक युद्धों से भी व्यापार को बड़ा नुकसान पहुँचता था, वे व्यापारियों को लूट लेते थे। **यशस्तिलक** में सार्थवाह के लिए सार्थ, सार्थ-पार्थिक तथा सार्थानीक शब्द आते हैं। समान या सहयुक्त अर्थ (पूंजी) वाले व्यापारी जो बाहरी मण्डियों से व्यापार करने के लिए टोली बनाकर चलते थे सार्थ कहलाते थे। उनका ज्येष्ठ व्यापारी सार्थवाह कहलाता था। सार्थवाह कुशल व्यापारी होने के साथ-साथ अच्छा पथ-प्रदर्शक भी होता था। धार्मिक क्षेत्र में जो स्थिति संघपति की थी वही स्थिति व्यापारिक क्षेत्र में सार्थवाह की थी।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार : जैन पुराणों में विदेशों से व्यापार का उल्लेख भी प्राप्त होता है। **यशस्तिलक** में स्वर्ण द्वीप और ताम्रलिप्ति से व्यापार का उल्लेख है। **हरिवंश** में वर्णित है कि एक व्यापारी स्त्री के आभूषण हाथ में लेकर व्यापार के निमित्त उशीरवर्त देश आया और वहाँ से कपास खरीदकर बेचने के लिए ताम्रलिप्ति गया। जिस तरह भारतीय सार्थ विदेशी व्यापार के लिए जाते थे उसी तरह विदेशी सार्थ भी भारत में व्यापार करने के लिए आते थे। **यशस्तिलक** में अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का उल्लेख पैठास्थान के नाम से आया है जहाँ पर अनेक देशों के व्यापारी व्यापार के लिए आते थे। जैन पुराणों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उस समय भारत में विदेशों से सामान का आयात-निर्यात दोनों ही होता था। यूनान, कश्मीर और वाह्लीक से भारत घोड़ों का आयात करता था। भारत से निर्यातित वस्तुओं में हाथी दाँत, रेशम, सूत, हीरा, नीलम, चंदन, केशर, मूंगा आदि थे।

उपसंहार

उपुर्यक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैन पुराणों के रचनाकाल में भारत की अर्थव्यवस्था प्रगतिशील थी। भारतीय गांव आत्मनिर्भर थे। गांव की अपनी प्रशासनिक एवं अर्थव्यवस्था थी। अर्थव्यस्था कृषि पर आधारित थी। गाँव में उत्पादन जरूरत के आधार पर ही नहीं होता था बल्कि बाजार व्यवस्था भी अस्तित्व में आ गयी थी। सामन्तवाद के व्यापक प्रभाव के बावजूद स्थानीय व्यापार स्थल एवं जल मार्गों से होता था। स्थानीय व्यापार के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी होता था। जैन पुराणों के अनुसार पूर्व मध्यकाल में भारत की अर्थव्यवस्था औसतन ठीक थी।

प्रश्नगत विषय पर विशेष जानकारी के लिये निम्नलिखित पुस्तकें दृष्टव्य हैं:-

१. नेमिचन्द्र जैन : **हरिवंशपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन**
२. नेमिचन्द्र शास्त्री : **आदिपुराण में प्रतिपादित भारत**
३. देवी प्रसाद मिश्र : **जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन**
४. हरीशचन्द्र वर्मा : **मध्यकालीन भारत**
५. गोकुलचन्द्र जैन : **यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन**
६. कैलाश चन्द्र जैन : **प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ**

सन्दर्भ

१. **पद्म पुराण** : १२३/१८२
२. **हरिवंशपुराण** : ६६/५२
३. **उत्तरपुराण** : प्रशस्ति ३५

- बड़े कुएँ के निकट, वण्डा (बेलई), जिला सागर

श्रीमद्भगवद्गीता के 'विश्वरूपदर्शन' पर जैन दार्शनिक दृष्टि

- डॉ. नलिनी जोशी

गीता के 'विश्वरूपदर्शन' की पार्श्वभूमि, स्थान तथा महत्त्व :

महाभारत के भीष्मपर्वांतर्गत **गीता**[1] को हम 'दार्शनिक काव्य' कह सकते हैं। कुरुक्षेत्र की रणभूमि में किये गये इस श्रीकृष्णोपदेश में कभी-कभी दार्शनिक अंश उभर आते हैं तो कभी-कभी काव्य के अंश अपना प्रभाव दिखाते हैं। उपलब्ध पूरी सात सौ श्लोकों की गीता किसी ने युद्धभूमि पर कही थी, यह कहना तार्किक दृष्टि से असंभव सी बात है। इसी वजह से कई शोधार्थियों ने 'मूल गीता' की खोज तथा 'प्रक्षेप' ढूँढने का प्रयास भी किया है। **गीता** के कई भक्तों ने इसके 'विश्वरूपदर्शन' अध्याय की इतनी प्रशंसा की है कि जैन दार्शनिक दृष्टि से उसका परीक्षण तथा मूल्यांकन करने की आवश्यकता अनुभव हुई। इस शोधलेख में यही प्रयास किया गया है।

गीता के हरेक अध्याय की पार्श्वभूमि अलग-अलग है। दूसरा अध्याय संजय के निवेदन से आरंभ होता है,[2] कुछ अध्यायों में कृष्ण सीधा कथन करने लगे हैं,[3] तथा कुछ अध्यायों में अर्जुन प्रश्न पूछता है और कृष्ण उत्तर स्वरूप अध्याय का कथन करते हैं।[4] 'विश्वरूपदर्शन' गीता का ग्यारहवाँ अध्याय है। दसवें अध्याय में कृष्ण ने 'विभूतियोग' का कथन किया है। इस जगत् में जो जो विभूतिमत्, सत्त्व, श्रीमत् तथा ऊर्जित है, उन सब को कृष्ण ने परमेश्वर की विभूतियाँ माना है। ये सब ईश्वर के अंशरूप हैं।[5] इस दर्शन से प्रभावित हुए अर्जुन की जिज्ञासा जागृत हो उठती है। पुरुषोत्तम का समग्र ऐश्वर्यसम्पन्न रूप वह देखना चाहता है। उसको ज्ञात है कि इस प्रकार का ऐश्वर्यसम्पन्न रूप चक्षु द्वारा देखने का उसका सामर्थ्य नहीं है, इसीलिए वह बहुत नम्रता से अपनी इच्छा प्रकट करता है।[6]

गीतोपदेश के प्रवाह में इस 'विश्वरूपदर्शन' विषय को समाविष्ट करने का कारण क्या है ? दार्शनिक दृष्टि से कम महत्त्व रखने वाले इस काव्यमय, अद्भुत, रोमांचक, रौद्र वर्णन के मूलस्रोत कहाँ पाए जाते हैं? वैदिक परम्परा के कौन-कौन से ग्रंथों में

इसका जिक्र किया गया है ? अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों की तरह इसकी खोज करते करते हुए हम **ऋग्वेद** के 'सहस्रशीर्षा पुरुष' सूक्त तक पहुँच जाते हैं। **ऋग्वेद** के पुरुषसूक्त, **यजुर्वेद** के रुद्राध्याय, अनेक प्रमुख उपनिषद्, **श्रीमद्भागवत** तथा अनेक अन्य पुराण तथा गीता का अनुकरण करने वाली अनेक अन्य गीताओं में किसी-न-किसी स्वरूप में 'विश्वरूपदर्शन' आता ही है। पं. सातवळेकर जी ने इसका विस्तृत विवेचन अर्थ सहित किया है। जिज्ञासु पंडितजी की टीका देखें।[७] आद्य शंकराचार्य, डॉ. राधाकृष्णन, योगी अरविंद, लोकमान्य तिलक तथा अन्य कई अभ्यासकों ने इस 'विश्वरूपदर्शन' की बहुत सराहना की है। सभी अध्यायों का सार, गीता-पर्वत का सर्वोच्च शिखर, गीता के सुवर्ण पात्र का मिष्ठान्न आदि स्तुतिसुमनों द्वारा अलंकृत ऐसे 'विश्वरूपदर्शन' का सही मूल्यांकन हम जैन दार्शनिक दृष्टि से करना चाहते हैं।

'विश्वरूपदर्शन' का स्वरूप और वर्णन -

'विश्वरूपदर्शन' के अंतर्गत प्रस्तुत किये गये मुद्दे संक्षेप में निम्नवत् हैं :

१. अर्जुन की विश्वस्वरूप देखने की जिज्ञासा, विश्वरूप देखने की असमर्थता।

२. कृष्ण द्वारा सैकड़ों हजारों रूप, नानाविध दिव्यवर्ण आदि से युक्त आकृतियाँ इत्यादि दिखाना। देखने के लिए दिव्य चक्षु प्रदान करना।

३. संजय के द्वारा अनेक मुख, नयन, अलंकार, आयुध, माला, गंध वाली आकृतियों का बयान, सहस्र-सूर्य-प्रभा का अनुभव करना।

४. अर्जुन के द्वारा दिव्य पुरुष के देह में सब प्राणिमात्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यक्ष, किन्नर, गंधर्व, आदित्य, इंद्र, रुद्र, मरुत्, सिद्धसंघ, राजाओं के समूह तथा कौरव, भीष्म, द्रोण, कर्ण और सब योद्धाओं को देखना।

५. उसी रूप में चंद्र-सूर्य, द्यावा-पृथिवी, अग्नि आदि पंचमहाभूत देखना।

६. उग्र, अद्भुत रूप, योद्धाओं द्वारा कराल दाढावाले मुख में प्रविष्ट होना, असहनीय उग्र तेज फैलना, किरीट, चक्रधारी चतुर्भुज रूप का उग्र रूप में परिणत होना, त्रैलोक्य का व्यथित होना तथा अर्जुन का भी भयभीत, खिन्न एवं व्यथित होना।

७. कृष्ण का कालरूप में निवेदन, सभी योद्धाओं के मृत्यु की निश्चिति, अर्जुन का निमित्तमात्र होना, युद्ध के लिए प्रेरणा।

८. भयग्रस्त अर्जुन का उस अद्भुत पुरुष को बार-बार वंदन।

९. कृष्ण के शरीर में यह सारा रूप देखकर अर्जुन का लज्जित होना। कृष्ण से पहले किये हुए बर्ताव के लिए अर्जुन द्वारा क्षमायाचना। पूर्वरूप में आने की विनती।

१०. कृष्ण द्वारा कथन--मैंने प्रसन्न होकर, कृपा और योगविशेष से यह अद्‌भुत दर्शन करवाया है। कोई भी मानव या देव वेद, यज्ञ, अध्ययन, दान, क्रिया, तप आदि से भी यह दर्शन नहीं कर सकता।

११. कृष्ण का आखिरी उपदेश--यह दर्शन केवल अनन्य भक्ति से हो सकता है। उसी से परमात्मा का ज्ञान, दर्शन और उसमें प्रवेश शक्य है। जो व्यक्ति परमेश्वर जैसा (समत्वबुद्धि युक्त) वर्तन करता है, तथा कर्म करता है, भक्त होता है, अनासक्त और प्राणिमात्रों के लिए वैर रहित होता है, वह ईश्वर या परमात्मरूप होता है।

यहाँ पर प्रथम दो बिन्दुओं का जैन दार्शनिक दृष्टि से परीक्षण एवं मूल्यांकन प्रस्तुत है। साथ ही विश्वरूपदर्शन के सम्बन्ध में अपने अध्ययन से हम जिन निष्कर्षों पर पहुँचे हैं, उनका कथन है।

१. अर्जुन की जिज्ञासा तथा असमर्थता प्रकट करना

जैन दर्शन की दृष्टि से विश्व का विराट स्वरूप देखने की जिज्ञासा भी ठीक है लेकिन खुद की असमर्थता की जानकारी होते हुए भी ऐसी विनती करना और वह सर्वज्ञ द्वारा मान्य करना ठीक नहीं हैं। हम कृष्ण की जगह सर्वज्ञ, तीर्थंकर या केवली को रखते तो जैन दर्शन की दृष्टि से उत्तर है कि विश्व का दर्शन करना एक ज्ञानविशेष है। मानव खुद की श्रद्धा, चारित्र तथा पुरुषार्थ द्वारा आध्यात्मिक प्रगति करे तो विश्वरूप उसमें अपने आप प्रकट होता है। हरेक जीव स्वतंत्र है। सर्वज्ञ में विश्व को जानने का तथा देखने का सामर्थ्य है[८] लेकिन वे अपने ज्ञान का संक्रमण नहीं कर सकते।

२. कृष्ण द्वारा रूपदर्शन कराना तथा दिव्य दृष्टि प्रदान करना

कृष्ण के कथनानुसार अगर यह विश्वरूप दिखाने की शक्ति उनकी यौगिक शक्ति या ऐश्वर्य माना जाय,[९] तो तीर्थंकर, केवली में भी ऐसी अनन्त शक्तियाँ होती हैं।[१०] लेकिन किसी के अनुरोध से अपनी यौगिक शक्ति का इस प्रकार का प्रगटीकरण जैन शास्त्र को सम्मत नहीं है।

विश्वरूप-दर्शन की जैन दार्शनिक दृष्टि से संक्षिप्त विचारणा

❖ दोनों परंपराओं ने विश्वदर्शन के बारे में 'पुरुष' की संकल्पना अपनायी है। **गीता** ने अद्‌भुत विराट पुरुष प्रस्तुत किया। जैन दर्शन त्रैलोक्य का बाह्याकार विशिष्ट पुरुषाकृति बताता है, उसमें अद्‌भुतता नहीं है।

❖ **महाभारत** में कृष्ण साक्षात् ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा एवं विष्णु के अवतार हैं। धर्मसंस्थापना, साधुपरित्राण और दुष्कृतविनाश इनके प्रयोजन हैं। अवतारसमाप्ति के बाद वह मूलरूप में विलीन हो जाते हैं। जैन दर्शन के अनुसार वह अनेक ऋद्धि सम्पन्न 'वासुदेव' तथा ६३ श्लाघा (या शलाका) पुरुषों में एक हैं। शुत्रहनन इत्यादि कार्यों के परिणामों के अनुसार वह नरकगति में गये हैं। अगले भवों में वह मोक्षगामी होंगे।

❖ **श्रीमद्भागवत** में कृष्ण ने यशोदामाता को अपने मुख में विश्वरूपदर्शन करवाया था, परंतु इस विश्वरूपदर्शन से वह भिन्न है। जैन दर्शन में तीर्थंकर, केवली आदि विश्वरूप कथन करते हैं, प्रत्यक्ष दिखाते नहीं।

❖ अर्जुन कृष्ण की कृपा से दिव्य दृष्टि पाता है। संजय तथा व्यास को भी दिव्य दृष्टि है। जैनदर्शन में किसी भी प्रकार का दर्शन कोई व्यक्ति एक दूसरे को नहीं करवा सकता। दर्शन तो उसी जीव के दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम आदि से होता है, किसी की कृपा से नहीं।

❖ कृष्ण ने खुद के स्वरूप में यह अद्भुत दर्शन करवाया। यद्यपि जैन दर्शनानुसार केवली 'लोकपूरण समुद्घात' के द्वारा अपने आत्मप्रदेश समूचे विश्व में फैला सकते हैं, तथापि यह केवल सैद्धान्तिक मान्यता है। इसका दर्शन वे अन्यों को नहीं करवाते।

❖ कृष्ण के कथनानुसार यह दर्शन केवल ईश्वर की 'अनन्य भक्ति' से होता है। खुद **गीता** की दृष्टि से भी अर्जुन कृष्ण का अनन्य भक्त नहीं वरन् सखा, बंधु, है और कृष्ण सारथी हैं। जैन दर्शन के अनुसार किसी भी प्रकार का ज्ञान खुद का पुरुषार्थ तथा आंत्मशुद्धि पर निर्भर है, भक्ति पर नहीं ।

❖ कृष्ण के कथनानुसार विश्वदर्शन में 'ईशकृपा का बल' अंतर्भूत होता है। जैन दर्शनानुसार 'आत्मबल' ही सर्वश्रेष्ठ है। आत्मश्रद्धा, सम्यक्ज्ञान तथा शुद्ध आचरण से ही सब संभव है, गुरुकृपा आदि से नहीं।

❖ **गीता** का विश्वरूपदर्शन अनेक शोधकर्ताओं ने प्रक्षेप-स्वरूप ही माना है। वैदिक परम्परा में इस स्वरूप के दर्शन की जो महत्ता है, उसी के कारण यह **गीता** में समाविष्ट हुआ है। तार्किक संगति की दृष्टि से देखा जाय तो युद्धभूमि पर इस प्रकार अद्भुत-दर्शन करवा के अर्जुन को युद्ध प्रेरित करना सुसंगत नहीं लगता।

(शेषांश पृष्ठ ५८ पर)

अबला और जैन-लॉ

-श्री अंशु जैन 'अमर'

'अबला जीवन' हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आंखों में पानी।।

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की **'यशोधरा'** में अभिव्यक्त ये सुप्रसिद्ध पंक्तियां नारी की स्थिति का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती हैं। यह महाकवि की कल्पना मात्र नहीं, यह तो यथार्थ का रेखांकन मात्र है। १९-२०वीं सदी की दबी-कुचली शोषित अशिक्षित नारी और आज २१वीं सदी की स्वावलंबन और उन्मुक्तता की होड़ में दौड़ती, सशक्तिकरण का प्रयास करती नारी के मध्य एक अजीब सा वैचारिक अर्न्तद्वन्द्व। निःसंदेह अत्यंत कठिन डगर है उस मंजिल को पाने की जहां उसे स्वयं विश्वास और एहसास हो सके कि यह समाज अब पुरुष प्रधान नहीं है, वह नाम मात्र की अर्द्धांगिनी नहीं है वरन् वास्तव में अर्द्धांगिनी है और अपने पति की पूर्ण-स्वामिनी भी।

मेरे अनुभव के अनुसार प्रत्येक पिता अपनी सभी सन्तानों को (चाहे पुत्र हो अथवा पुत्री) अपनी सामर्थ्यानुसार अधिकतम सुख-साधन देने का प्रयास करता है। वह अपने से बेहतर भोजन, वस्त्र, चिकित्सा, शिक्षा आदि उपलब्ध कराने को तत्पर रहता है। ऐसे में पिता के घर पुत्री भी प्यार एवं सुख-साधनों का लाभ पुत्रवत् प्राप्त करती है। उसकी स्थिति अपने पिता के घर प्रायः 'शोषित' की नहीं होती है। लेकिन जब पुत्री का विवाह हो जाता है तो वह एक नये परिवार में प्रविष्ट होती है और अपने पिता का घर छोड़ चुकी होती है। वह नये परिवार अर्थात् ससुराल में विभिन्न पद धारण कर रिश्ते निभाती तो है, परन्तु उसके पास अपनी धन-संपत्ति कुछ भी नहीं होती है। उसका स्वतंत्र अस्तित्व लगभग समाप्त हो जाता है। ससुराल में उसके आर्थिक स्वावलम्बन एवं स्वायत्ता का प्रायः लोप हो जाता है। अनेक परिवारों में वह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं तक के लिये पराश्रित हो जाती है। परिणामस्वरूप वह सामाजिक, पारिवारिक और दाम्पत्य जीवन के साथ-साथ अपने निजी विषयों-समस्याओं पर निर्णय लेना तो दूर, विचार तक प्रकट नहीं कर सकती है। और इस 'अबला' के पति की मृत्यु होते ही उसका 'शोषित' रूप प्रकट हो जाता है।

नारी की ऐसी शोचनीय स्थिति क्यों? इस प्रश्न का उत्तर हमें अपनी भारतीय सामाजिक व्यवस्था के मंथन-चिंतन में ही मिलेगा।

'हिन्दू धर्म' में विवाह एक अत्यंत पवित्र धार्मिक संस्कार माना गया है। विवाहोपरान्त पत्नी 'धर्म-पत्नी' कहलाती है क्योंकि कोई भी धार्मिक अनुष्ठान पत्नी के बिना पूर्ण हो ही नहीं सकता है। दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। विवाह का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य सन्तान अर्थात् पुत्र की प्राप्ति माना गया है। पुत्र को जन्म देकर ही पति-पत्नी पितृ-ऋण से मुक्त हो सकते हैं। पितृ-ऋण से उन्मुक्त हुए बिना व्यक्ति स्वर्ग का अधिकारी नहीं हो सकता है, और वह नरक का भागी होता है। इस प्रकार नारी वंशज उत्पन्न करने वाली जननी तो है, धर्म-पत्नी भी और सामाजिक-धार्मिक उत्तरदायित्वों के लिए अर्द्धांगिनी भी है। किन्तु 'हिन्दू-विधि' में उसे अर्द्धांगिनी नहीं माना गया है। पति की मृत्यु के पश्चात् वह सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी नहीं होती है, मात्र आंशिक उत्तराधिकारी रह जाती है। जब पत्नी अर्द्धांगिनी है, और पति-पत्नी एक-दूसरे के पूरक हैं तब वह दोनों एक समान स्वामित्व के अधिकारी हैं। पति के जीवनकाल में न सही, कम से कम पति की मृत्यु के पश्चात तो विधवा को पति की संपत्ति में पति के समान पूर्ण-स्वामित्व मिलना ही चाहिए।

लेकिन प्राचीन हिन्दू-विधि एवं हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६, दोनों में विधवा को सपिण्ड उत्तराधिकारियों--पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भ्राता, पुत्री आदि के साथ मात्र आंशिक सह-आयोगी (Tenant-in-common)/उत्तराधिकारी माना गया है। वह पति की सम्पत्ति की एकल स्वामिनी नहीं होती है। ऐसे में, यदि पुत्र दुष्ट प्रकृति का हो तो वह विधवा मां को उसका हिस्सा/अंश/भाग देकर अलग हो सकता है और वृद्धा मां को अकेला छोड़ सकता है, जिससे उसका वैधव्य जीवन नरक में परिणत हो सकता है।

इसके विपरीत कतिपय **जैन नीति ग्रन्थों** में उत्तराधिकार आदि के संबंध में दी गई व्यवस्थाओं, जिन्हें 'जैन लॉ' या 'जैन विधि' नाम से संकलित किया गया, में पत्नी की स्थिति को समुन्नत बनाया गया है। उनमें उसे पति के जीवनकाल में तो अर्द्धांगिनी माना ही गया, पति की मृत्यु के बाद भी उसे पति की सम्पत्ति में मात्र आंशिक सह-उत्तराधिकारी न मानकर सर्वाधिकार प्राप्त पूर्ण स्वामिनी माना गया है। दायादों (Inheriters) की सूची में विधवा पत्नी को पति की सम्पत्ति में प्रथम स्थान प्रदान किया गया है-

"दायादा के के विहु पठमं भज्जा तदो दुपुत्तोहि।।"[1]

(अर्थात् दायाद कौन-कौन हो सकते हैं? प्रथम धर्मपत्नी, फिर पुत्र)

प्राचीन जैन विधि ग्रंथों में पुत्र अथवा अन्य दायादों के समक्ष विधवा के प्रथम अधिकार एवं अधिमान्यता को स्वीकार करते हुए दायादों की एक क्रमिक सूची निर्धारित की गई है -

"पत्नी पुत्रश्च भ्रातृव्याः सपिण्डश्च दुहितृजः।
बन्धुजो गोत्रजश्चैव स्वामी स्यादुत्तरोत्तरम्।।"[२]

(अर्थात् पत्नी, पुत्र, भाई का पुत्र, सपिण्ड, दौहित्र, बन्धु का पुत्र, और गोत्रज, क्रमशः एक दूसरे के अभाव में उत्तरोत्तर दायभागी होते हैं)।

इस विधि-सिद्धांत की पुष्टि एक अन्य प्राचीन जैन ग्रंथ **"वर्द्धमान नीति"** से भी होती है, जहां निम्नवत् उल्लेख मिलता है -

"पत्नीपुत्रौ भ्रातृजाश्च सपिण्डस्तत्सुतासुतः।
बान्धवो गोत्रजा ज्ञात्या द्रव्येशा ह्युत्तरोत्तरम्।।"[३]

पति की सम्पत्ति में विधवा पुत्रादि के साथ आंशिक सहभागी नहीं होती है। जैन-विधि में वह मृत पति के समान ही सर्वाधिकार प्राप्त पूर्ण एकल स्वामिनी होती है, चाहे विधवा पुत्रवती हो अथवा पुत्रहीन ही क्यों न हो, यथा -

"पत्युर्धनहरी पत्नी या स्याच्चेद्वरवर्णिनी।
सर्वाधिकारं पतिवत् सति पुत्रेऽथवाऽसति।।"[४]

पति की मृत्यु के पश्चात् विधवा अपने पुत्रों, श्वसुर, जेठ अथवा देवर पर आश्रित नहीं होती है। उसका विधवा होना कोई पाप या अपराध नहीं है। वह अपना शेष वैधव्य जीवन् समस्त पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का निवर्हन करते हुए सकुशल एवं ससम्मान पूर्ण कर सकती है। वह प्राप्त धन-सम्पत्ति को किसी भी प्रकार खर्च करने, गिरवी रखने तथा बेचने की भी अधिकारिणी है, यथा -

"तन्भिषेणैव निर्वाहं कुर्यात्सा स्वजनस्य हि।
कुर्याद्धर्मज्ञातिकृत्ये स्वतूनामधि विक्रये।।"[५]

पति के मरने की दशा में ही नहीं वरन् पति के लापता होने, बावला होने अथवा दीक्षा लेकर त्यागी होने की स्थितियों में भी वह पति की संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी होती है, यथा -

"भ्रष्टे नष्टे च विक्षिप्ते पत्यौ प्रव्रजिते मृते।
तस्य निःशेषवित्तस्याधिपा स्याद्वरवर्णिनी।।"[६]

सन्तानहीन विधवा किसी भी योग्य लड़के को गोद लेने के लिए भी स्वतंत्र मानी गयी है, यथा -

'ग्राह्यः सद्गोत्रजः पुत्रो भर्ता इव कुलस्त्रिया।
भर्तृस्थाने नियोक्तव्यो न श्वश्रवा स्वपतेः पदे।।"[७]

पति के निस्सन्तान मर जाने पर उसकी विधवा सम्पत्ति की स्वामिनी होती है और यदि विधवा अपनी पुत्री के हित में कोई लड़का गोद न ले तो उसके मरने पर जेठ-देवर के पुत्र उसकी संपत्ति के मालिक नहीं होंगे बल्कि उसकी पुत्री ही

अधिकारिणी होती है, यथा -

"पतेरप्रजसो मृत्यौ तद्द्रव्याधिपतिर्वधूः।
दुहितृप्रेमतः पुत्रं न गृह्णीयात्कदाचन।।
न ज्येष्ठदेवरसुता दायभागाधिकारिणः।
तन्मृतौ तत्सुता मुख्या सर्वद्रव्याधिकारिणी।।"[८]

यही नहीं, हिन्दू-धर्म के विपरीत जैन-धर्म में पुत्रहीन को भी पंचकल्याण का भागी और देवेन्द्रों से पूज्य बताया गया है, यथा-

"पुत्रेण स्यात्पुण्यवत्त्वमपुत्रः पापभुग्भवेत्।
पुत्रवन्तोऽत्र दृश्यन्ते पामराः कणयाचकाः।।८।।
दृष्टास्तीर्थकृतोऽपुत्रा पञ्चकल्याणभागिनः।
देवेन्द्रपूज्यपादाब्जा लोकत्रयविलोकिनः।।९।।[९]

यदि स्त्री संतानहीन-पुत्रहीन है, तब भी वह पुण्य की अधिकारिणी है।

हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिख समुदाय के संपत्ति-विवाद प्रकरणों में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६, के प्राविधान लागू होते हैं, न कि जैन-विधि के। उक्त अधिनियम १९५६ के निर्माण एवं संशोधनों के अवसर पर प्रायः जैनविधि के उत्तराधिकार के उपर्युक्त मूल सिद्धान्त की अनदेखी की जाती रही है तथा इसे अधिनियम में शामिल नहीं किया गया है।

भले ही 'जैन विधि' को कानूनी मान्यता प्राप्त नहीं हुई हो, इसमें प्रतिपादित सिद्धान्त सभी विधवा नारियों की आर्थिक स्थिति के समुन्नयन के लिये उपादेय हैं। यह भी ध्यातव्य है कि स्वयं सरकार ने, समय की मांग को देखते हुए, अपने कर्मचारियों की विधवाओं के लिये पेन्शन, नौकरी आदि सुविधाओं की व्यवस्था कर इस दिशा में पहल कर दी है। अतः समाज में सभी विधवा नारियों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से वर्तमान कानून में जैन नीति ग्रन्थों में प्रतिपादित सिद्धान्तों का भी समावेश किया जाना समीचीन प्रतीत होता है।

सन्दर्भ-सूची

(१) **इन्द्रनन्दि जिनसंहिताः** श्लोक-३५; (२) **अर्हन्नीतिः** श्लोक-७४;
(३) **वर्द्धमान नीतिः** श्लोक-११; (४) वहीः श्लोक-१४; (५) वहीः श्लोक-२४;
(६) **अर्हन्नीतिः** श्लोक-५३; (७) **भद्रबाहु संहिताः** श्लोक-७५;
(८) वहीः श्लोक-९५ व ९६; (९) वहीः श्लोक-८ व ९

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

धर्म के दशलक्षणों में प्रथम शौच या सत्य?

- श्री मनोहर मारवडकर

तत्त्वार्थ राजवार्तिक (बनारस में मूल संस्कृत में सन् १९१५ ई., वीर निर्वाण संवत् २४४१, में श्री पन्नालाल जैन द्वारा चंद्रप्रभा प्रेस में मुद्रित) में पृ. ३२३ पर मूल में छपा हुआ सूत्र इस प्रकार है -

उत्तमक्षमामार्दवार्जव **शौच सत्य** संयम तपस्त्यागाकिंचन्य ब्रह्मचर्याणि धर्मः।।

इसी तरह पं. मनोहरलाल शास्त्री द्वारा संपादित व निर्णयसागर मुद्रणालय मुंबई में मुद्रित मूल संस्कृत वृत्ति रूप **'श्लोकवार्तिक'** (पृ. ४८८) में भी इसी प्रकार सूत्र की वृत्ति है।

दोनों प्राचीन ग्रंथों के वार्तिकों में प्रथम स्थान शौच धर्म को दिया गया है। सत्य धर्म को उसके बाद स्थान दिया गया है।

श्री पं. रामजीभाई द्वारा संपादित व टोडरमल स्मारक भवन द्वारा जयपुर से प्रकाशित ग्रंथ में भी 'शौच' के बाद ही 'सत्य' का उल्लेख है। जीवराज जैन ग्रंथमाला, सोलापुर, द्वारा प्रकाशित **अर्थप्रकाशिका टीका** (पं. सदासुखदासजी विरचित) में भी 'शौच' को सत्य के पहले स्थान दिया गया है। (पृ. ३८४)।

इस प्रकार प्राचीन ग्रंथों के आधार से शौच धर्म को चौथा स्थान व सत्य धर्म को पांचवां स्थान दिया गया है। आ. श्री अमृतचंद्र सूरि विरचित **तत्त्वार्थ सार** में भी छठे अधिकार के श्लोक १६-१७ में शौच के बाद ही सत्य धर्म का स्वरूप दिया गया है। वह इस प्रकार है- - - परिभोगंतेवाभोगत्वं जीवितेंद्रिय भदतः।। चातुर्विधस्य लोभस्य निवृत्ति, शोचमुच्यते। ज्ञान चारित्र शिक्षादौ स धर्मः सुनिगद्यते। धर्मोपबृंहणार्थं यत् साधुसत्यं तदुच्यते।।१७।।

किंतु सभी प्राचीन अर्वाचीन पूजनों में जो उत्तर में छपी हैं उनमें सत्य के बाद में शौच धर्म को स्थान दिया गया है। जयमालाओं में भी सत्य को प्रथम व शौच को उसके अनंतर स्थान प्राप्त है। दक्षिण प्रांतों में छपी पूजनों में प्रथमतः शौच व बाद में सत्य का स्थान है। ब्र. रवींद्र जी द्वारा लिखित **'दशलक्षण धर्म का मर्म'** में चौथा सोरठा शौच को व पांचवां सत्य को समर्पित है, किंतु **तत्त्वार्थ सूत्र** पाठों में सत्य के बाद शौच को स्थान दिया जाता है।

मुझे यह प्रश्न हर दम कचोटता है कि शौचधर्म जो सत्य के पहले आना चाहिये उसे हिंदी पूजनकार तथा **तत्त्वार्थसूत्र** पाठों व विवेचनों में सत्य को प्रथम स्थान शौच के पहले क्यों दिया जाता है ?

न्यायपूर्ण रीति से शौच को ही सर्वत्र प्राथमिकता देनी चाहिये क्योंकि क्रोध, मान, माया और लोभ इन कषाय चतुष्क का अभाव क्रम से उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव व शौच धर्मों के प्रगट होने पर होता है। जब यह अनंतानुबंधी कषाय जाते हैं तब सम्यग्दर्शन रूपी सत्य सूर्य प्रगट होता है। वैसे दोनों युगपत् ही हैं क्योंकि पहले चार लक्षण सम्यग्दर्शन के सूचक हैं। सत्यधर्म सम्यक्ज्ञान का सूचक है और संयम से ब्रह्मचर्य तक पांच धर्म सम्यक् चारित्र के सूचक हैं। इस तरह इन दशलक्षण रूप धर्म से रत्नत्रय धर्म का अर्थात् मोक्षमार्ग का सूचना हुआ है।

अतः आगमाधार से या युक्ति अनुमान से भी शौच धर्म को ही प्राथमिक स्थान आता है। सत्य धर्म को प्रथम स्थान जो दिया जाता है वह युक्तिपूर्ण नहीं लगता। इस संबंध में विद्वत्गण विचार कर प्रकाश डालें।

-स्वधर्म, १७ ब, महावीर नगर, नागपुर-९

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द समिति, उ.प्र.

३० जुलाई, २००६ ई., को सम्पन्न तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., की साधारण सभा की बैठक में सर्वसम्मति से आगामी तीन वर्षों के लिये पदाधिकारियों और प्रबंध समिति सदस्यों का निर्वाचन हुआ।

श्री लूणकरण नाहर जैन अध्यक्ष; श्री कन्हैयालाल जैन एवं श्री नरेशचन्द्र जैन उपाध्यक्ष; श्री रमा कान्त जैन महामंत्री; श्री नलिन कान्त जैन संयुक्त मंत्री; श्री महेन्द्र प्रसाद जैन एवं श्री रोशनलाल नाहर उपमंत्री, तथा श्री बिजयलाल जैन कोषाध्यक्ष निर्वाचित हुए।

साथ ही डॉ. शशि कान्त, डॉ. पूर्णचन्द्र जैन, श्री नेमिचन्द्र जैन, डॉ. विनय कुमार जैन, श्री सन्दीप कान्त जैन, श्री रोहित कुमार जैन, श्री धनेन्द्र कुमार जैन, श्री आदित्य जैन, श्री दीपक जैन, श्री अजय कुमार जैन कागजी, श्री राकेश कुमार जैन तथा श्री हंसराज जैन प्रबन्ध समिति के सदस्य निर्वाचित हुए।

डॉ. दौलत सिंह कोठारी

दौलत रहे विज्ञान की, शिक्षा केर कोठार।
मानवता थी गज़ब की, गुरु यश के भण्डार।।

६ जुलाई, १९०६ ई., को राजस्थान में उदयपुर में जन्मे और ४ फरवरी, १९९३ ई., को जयपुर में ८६ वर्ष की वय में दिवंगत हुए डॉ. दौलत सिंह कोठारी एक ऐसा व्यक्तित्व थे जिन्होंने अपनी प्रतिभा के सूर्य से विज्ञान और शिक्षा जगत को दीप्त किया था। इनके पिता श्री फतेहलाल कोठारी एक शासकीय विद्यालय में प्रधानाचार्य थे और माताश्री लहेरबाई एक धर्मनिष्ठ स्थानकवासी जैन श्राविका थीं जिनकी पाँच संतानों में से एक वह थे। सन् १९१८ ई. में जब वह मात्र १२ वर्ष के थे राष्ट्रव्यापी प्लेग में उनके ३८ वर्षीय पिताजी का निधन हो गया और उनका परिवार घोर आर्थिक संकट से ग्रस्त हो गया। उस संकट-घड़ी में उनके पिताजी के मित्र सर सिरेमल बाफना, जो इन्दौर में तत्कालीन होल्कर राज्य के प्रधानमंत्री थे, ने उन्हें अपने आश्रय में इंदौर बुला लिया। वहीं दौलत सिंह जी का शिक्षा-क्रम आगे बढ़ा। सन् १९२२ ई. में उन्होंने महाराजा शिवाजीराव होल्कर हाईस्कूल, इंदौर, से मैट्रिक तथा सन् १९२४ ई. में उदयपुर से इन्टरमीडिएट परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। सम्पूर्ण राजपुताना बोर्ड में फिजिक्स, कैमिस्ट्री एवं गणित में प्रथम स्थान पाने से प्रसन्न होकर मेवाड़ के महाराणा ने इन्हें पचास रुपये प्रतिमाह की छात्रवृत्ति प्रदान की थी जो उस समय एक ऐतिहासिक सम्मान था। सन् १९२६ ई. में उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.एस-सी.तथा सन् १९२८ ई. में एम.एस-सी. परीक्षा उत्तीर्ण की। इस परीक्षा में उच्चतम स्थान प्राप्त करने पर विश्वविद्यालय प्रशासन ने उन्हें भौतिकी विभाग में डिमोन्सट्रेटर के पद पर नियुक्ति प्रदान कर इनकी योग्यता को मान्यता प्रदान की। भौतिकी के विभागाध्यक्ष प्रो. मेघनाथ साहा उनकी प्रतिभा एवं प्रज्ञा सम्पन्न बौद्धिक क्षमता से बड़े प्रभावित थे। मेवाड़ राज्य ने भी उनके भाई और माताजी को सहायता स्वरूप रु. ३५००/- का अनुदान प्रदान किया जिसे बाद में उन्होंने राज्य को वापस कर दिया।

अपनी माताजी लहेरबाई जी के जीवनादर्श—कड़ी मेहनत, पक्का इरादा, सौम्य-सादा जीवन और दूर दृष्टि—को अपनाकर दौलत सिंह जी प्रगति-पथ पर बढ़ते गये। जनवरी १९२५ ई. में जब वह अध्यनरत ही थे सुश्री सज्जनकंवर सुराणा के साथ उनका विवाह हो गया, किन्तु वैवाहिक जीवन उनकी शैक्षिक प्रगति में कभी बाधक नहीं रहा।

सितम्बर १९३० ई. में कोठारी जी को कैम्ब्रिज में लार्ड रदरफोर्ड लैब एवं शोध संस्थान से जुड़ने का अवसर प्राप्त हुआ। सन् १९३३ ई. तक वह कैम्ब्रिज में रहे और वहाँ से पी.एच-डी. प्राप्त कर स्वदेश आये।

मई १९३४ ई. में डॉ. कोठारी दिल्ली विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग में हेड ऑफ दि डिपार्टमेन्ट एण्ड रीडर के पद पर नियुक्त हुए। उस समय विभाग की हालत बहुत अच्छी नहीं थी। बी.एस-सी. तक की डिग्री प्रदान की जाती थी। डॉ. कोठारी ने १८ जून, १९३४ ई., को विज्ञान फैकल्टी में रसायन और भौतिकी विभाग का विस्तार करके एम.एस-सी. स्तर की अध्ययन व्यवस्था की। प्रथम बैच में पाँच छात्रों ने एम.एस-सी. परीक्षा उत्तीर्ण की। अध्यापक, शोधार्थी और अधीक्षक के रूप में डाक्टर साहब अकादमी के हर छोटे-बड़े काम में पूरे मनोयोग से जुड़े। उनकी प्रतिभा से प्रभावित हो वाइस चांसलर सर मैरिस ग्वायर ने विज्ञान विभाग को विशिष्ट पहचान प्राप्त करने हेतु नया भवन, उपकरण और समर्पित शिक्षक समुदाय उपलब्ध कराया। फलस्वरूप शीघ्र ही लगभग २०० छात्र विभाग में अध्ययनार्थ आ गये और अनेक ख्यातनामा विद्वानों ने उससे अपने आपको जोड़ा। विभाग ने अनेक ऐसे छात्रों का निर्माण किया जिन्होंने देश में ही नहीं विदेशों में भी, विशेषकर अमेरिका में, अपने अनुभव से भारतीय चिंतन एवं प्रतिभा का लोहा मनवा लिया। डाक्टर साहब जब अपने आवास से टहलने निकलते तो अनेक शोधार्थी छात्र और प्राध्यापक उनके साथ हो लेते थे तथा भौतिकी के अनेक अनसुलझे रहस्यों पर उनका मार्गदर्शन पाकर अपने अनुभव में वृद्धि कर लेते थे। डाक्टर साहब ने विश्वविद्यालयीन वाचनालय का भी विकास किया। उनके प्रयास से दिसम्बर १९३७ ई. में ऑल इण्डिया लायब्रेरी कान्फ्रेंस आयोजित हुई और अगस्त १९४२ में 'डॉ. रघुनाथन प्लान' स्वीकृत की गई।

हृदय में करुणा के साथ-साथ राष्ट्रीय गौरव के प्रति भी सजग एवं समर्पित इन देशभक्त की प्रतिभा को आँक कर प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के निर्देश पर भारत सरकार के रक्षा विभाग ने सन् १९४८ ई. में उन्हें मानद वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में नियुक्त किया। सन् १९६१ ई. तक वह विश्वविद्यालय में अध्यापन के साथ-साथ वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में राष्ट्र की सेवा करते रहे। इस अवधि में उन्हें भारतीय आणविक अनुसंधान के जनक डॉ. होमी जहाँगीर भाभा तथा विज्ञान एवं वाणिज्य विकास अनुसंधान संस्थान के डॉ. शान्ति स्वरूप भटनागर जैसे व्यक्तित्वों का अन्तरंग साहचर्य प्राप्त हुआ। डाक्टर साहब ने सन् १९४९ ई. में ४०० वरिष्ठ वैज्ञानिकों तथा १०० कनिष्ठ सहायकों को लेकर रक्षा विभाग के अन्तर्गत रक्षा अनुसंधान संस्थान की स्थापना की थी जिसमें अब २५०० से अधिक वैज्ञानिक कार्यरत हैं। यह संस्थान पुणे के आयुध अध्ययन संस्थान आदि को मार्गदर्शन देता है।

सन् १९४५ ई. में जापान पर हुए आणविक आक्रमण के सन्दर्भ में डाक्टर कोठारी ने अपने चिन्तन एवं अनुभव का निष्कर्ष **'न्यूक्लीयर एक्सप्लोजन्स एण्ड देअर इफेक्ट्स'** पुस्तक में वर्णित किया। पं. नेहरू और डॉ. भाभा की प्रेरणा से प्रणीत और भारत सरकार द्वारा सन् १९५६ ई. में प्रकाशित यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि उसका एशियन भाषाओं के साथ-साथ जर्मन भाषा में भी अनुवाद हुआ। भारत के नाटो आन्दोलन से जुड़ने तथा गुटनिरपेक्ष स्थिति को स्वीकार करने में वैचारिक भूमिका इस पुस्तक ने प्रदान की।

डॉ. कोठारी की मौलिक गुणवत्ता एवं अध्यापकीय, अकादमिक और प्रशासनिक अनुभवों को दृष्टिगत रख मार्च १९६१ ई. में उन्हें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का अध्यक्ष बनाया गया। जनवरी १९७३ ई. तक वह उक्त पद पर कार्यरत रहे। उनके नेतृत्व में भारतीय शिक्षा संस्थानों को उन्नति की अवधारणा प्राप्त हुई और उनकी बौद्धिक एवं शैक्षणिक प्रतिभा का लाभ मिला। शिक्षा नीति के सन्दर्भ में उनकी रिपोर्ट एक धर्मग्रन्थ की तरह आज भी मान्य है।

अनुदान आयोग से मुक्त होने के उपरान्त वह जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के कुलाधिपति बना दिये गये। भौतिक शास्त्र (फिजिक्स) के अनेक जटिल विषयों पर उनके शोध-पत्र देश-विदेश की प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए जिन्होंने उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति उपलब्ध कराई। भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में तथा विदेशी विज्ञान अकादमियों और विदेशी सरकारों के आमन्त्रण पर उन्हें विभिन्न देशों के भ्रमण का अवसर प्राप्त हुआ। इण्डियन साइंस कांग्रेस के सन् १९६३ ई. में हुए स्वर्ण जयन्ती अधिवेशन में वह सभापति बनाये गये। भारत सरकार द्वारा नियुक्त भारतीय शिक्षा आयोग के वह वर्ष १९६४-६६ में अध्यक्ष रहे। सन् १९७३ ई. में इण्डियन नेशनल साइंस एकेडेमी के वह अध्यक्ष निर्वाचित हुए। साइंटिफिक एण्ड टेक्निकल टर्मिनोलाजी कमेटी के वह प्रथम अध्यक्ष थे। उस पद पर अनेक वर्षों तक वह कार्यरत रहे। काउन्सिल फॉर साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च की प्रबन्धन समिति के वह अनेक वर्षों तक सदस्य रहे तथा उसकी फिजिकल रिसर्च कमेटी एवं एरोनॉटिकल रिसर्च कमेटी के अध्यक्ष रहे। इण्डियन नेशनल साइंस एकेडेमी के भी वह सभापति रहे।

भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों ने उन्हें आमंत्रित कर मानद उपाधियां प्रदान कीं। दिल्ली विश्वविद्यालय ने तो पं. जवाहरलाल नेहरू और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के साथ उन्हें भी डी. लिट्. की उपाधि से सम्मानित किया।

विज्ञान एवं शिक्षा जगत के लिये की गई उनकी सेवाओं के लिये राष्ट्रपति द्वारा उन्हें सन् १९६२ ई. में **'पद्म भूषण'** तथा तदनन्तर १९७३ ई. में **'पद्म विभूषण'** के अलंकरण से विभूषित किया गया।

अपनी माताजी से प्राप्त संस्कारों को लेकर सरल-सादा जीवन यापन करने वाले डॉ. दौलत सिंह कोठारी मात्र अकादमिक व्यक्ति नहीं थे। वह विज्ञान की भाषा में आत्मा की बात कहने वाले महामानव थे। अनेक स्मृति व्याख्यानमालाओं में उन्होंने विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय करते हुए जनता की भाषा में जनता के बीच ज्ञान-विज्ञान का सौन्दर्य परोसा। इस संदर्भ में अहिल्यादेवी विश्वविद्यालय, इन्दौर, में दिया गया **'अहिंसा और विज्ञान'** विषयक उनका व्याख्यान उल्लेखनीय है। शिक्षा उनके लिये व्यवसाय मात्र नहीं थी, उन्हें शिक्षा, विशेषकर उच्च शिक्षा, से सदा प्यार रहा। वह वास्तविक अर्थ में श्रुत सेवी, ज्ञानाराधक, शब्द पुरुष थे और श्रावक के गुणों को अंगीकृत किये हुए थे। तभी जैन समाज के भी विभिन्न वर्गों द्वारा अनेक बार उन्हें सार्वजनिक रूप से सम्मानित किया गया। उन्हें वर्षों तक अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस के राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा नई दिल्ली की अहिंसा इण्टरनेशनल संस्था का संरक्षक बनने का गौरव भी प्राप्त रहा।

मांसयुक्त दवाई लेने के बजाय मर जाना पसंद करने वाले डॉ. दौलत सिंह कोठारी शाश्वत शाकाहारी रहे। किसी भी स्थिति-परिस्थिति में उन्होंने अपने इस नियम से समझौता नहीं किया।

भले ही जैन धर्म, दर्शन आदि से संबंधित उनकी कोई कृति हमारे संज्ञान में नहीं है, उन्हें जैन धर्म दर्शन आदि से संबंधित साहित्य का अध्ययन करने में अगाध रुचि रही। पिताजी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की पुस्तक **Religion and Culture of the Jains** को पढ़ने पर उन्होंने उनको बधाई देते हुए लिखा था, **"It is a most welcome book. I think it should be brought out also in a paper back edition for wide circulation."**

सुयोग्य सन्तति के जन्मदाता होने का सौभाग्य भी डॉ. दौलतसिंह कोठारी को प्राप्त रहा। उनके सबसे बड़े पुत्र डॉ. एल. एस कोठारी दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्रोफेसर, द्वितीय पुत्र डॉ. एल. के. कोठारी रवीन्द्रनाथ टैगोर मेडिकल कालेज, उदयपुर, में फिजियोलॉजी में रीडर तथा तृतीय पुत्र श्री जीवन कोठारी सी. पी. डब्लू. डी. में सीनियर आर्किटेक्ट रहे।

वर्ष २००६ डॉ. दौलत सिंह कोठारी जी का जन्म शताब्दी वर्ष है। अपनी बहुआयामी प्रतिभा से जैन समाज और भारतदेश का नाम आलोकित करने वाले, भावी पीढ़ियों के लिये प्रेरणास्रोत, विज्ञान शिरोमणि, कीर्तिपुरुष, महामानव डॉ. कोठारी जी को हमारा भी सादर नमन है।

- रमा कान्त जैन

वासोकुण्ड-वैशाली के जनमानस में महावीर

- डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल

वासोकुण्ड-वैशाली के जनजीवन एवं लोक-संस्कृति पर चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान महावीर के प्रभाव का मूल्यांकन करने की दृष्टि से दिनांक १३ एवं १४ फरवरी, २००४ ई., को वहाँ के बुद्धिजीवियों, राजनयिकों और विविध स्तर के स्थानीय नागरिकों का व्यक्तिगत साक्षात्कार लिया गया। सर्वेक्षण में प्राप्त वासोकुण्ड-वैशाली वासियों के सामाजिक-धार्मिक संस्कार, रीति-रिवाज, भाषा-बोली, लोक-संस्कृति, विचार-चिंतन, प्राकृतिक पर्यावरण आदि पर भगवान महावीर के अमिट निरंतरित प्रभाव का आह्लादकारी अनुभव सर्व हिताय यहाँ प्रस्तुत है।

वासोकुण्ड-वैशाली में २.५ बीघा पवित्र अहल्यभूमि महावीर की जन्मस्थली के रूप में लगभग डेढ़ सौ पीढ़ियों से पावन-पीड़ाहारी मानी जाती है। इस पवित्र भूमि पर महावीर जयंती अर्थात् चैत्र सुदी तेरस के दिन सैकड़ों नागरिक जाति-भेद भूलकर जुलूस के रूप में जाते हैं। अक्षत अर्पित कर वहाँ की पावन मिट्टी माथे पर लगाते हैं और अपने श्रद्धासुमन अपने आराध्य महावीर को समर्पित करते हैं। यह ज्ञातव्य है कि वहाँ हुएनसांग (सातवीं शती) ने बहुत से निर्ग्रन्थ साधु देखे थे। किन्तु बारहवीं शताब्दी के बाद तुरुष्क आक्रमण के कारण वैशाली जैन-जन विहीन हो गयी थी और अभी भी है। सन् १९४५ ई. से महावीर जयंती की भव्य शोभायात्रा स्थानीय अजैन भक्तों द्वारा बौना (बावन) पोखर दि. जैन मन्दिर से प्रतिवर्ष तीन किलोमीटर दूर वासोकुण्ड तक प्रातःकाल निकलती है। दीपावली के दिन, जो भगवान महावीर का निर्वाण दिवस है, वहाँ के नागरिक अहल्य भूमि जाकर दीपक जलाते हैं और अपने आराध्य को नमन करते हैं। शादी-विवाह के मांगलिक अवसरों पर अहल्य भूमि जाकर नमन करते हैं और अगरबत्ती जलाकर सुखी जीवन की कामना करते हैं।

अहल्य भूमि के सामने प्रतिवर्ष श्रावण शुक्ल के प्रथम मंगलवार या शनिवार को आयोजित उत्सव में सभी वर्ण-जातियों के व्यक्ति सर्व-भेद भूलकर एक झंडे के नीचे महावीर एवं अन्य देवताओं की जय बोलकर परस्पर प्रसाद फल आदि का वितरण कर खाते हैं। इस उत्सव में पासवान (हरिजन), क्षत्रिय, कहार, ब्राह्मण, कुम्हार, मुसलमान, भूमिहार आदि सभी सम्मिलित होते हैं।

महावीर काश्यप गोत्री क्षत्रिय थे। वासोकुण्ड-वैशाली में काश्यप गोत्री क्षत्रिय अपने को महावीर का वंशज मानते हैं। महावीर ज्ञातृवंशी थे। विद्यमान जथरिया जाति के व्यक्ति महावीर को अपना आराध्य मानते हैं।

वासोकुण्ड के निकट बनियाग्राम में जमीन से आठ फुट नीचे एक पद्मासन और एक खड्गासन दि. जैन मूर्तियाँ सन् १८९२ ई. में खुदाई में मिलीं। बौना (बावन) पोखर में दो फुट अवगाहना की दो हजार वर्ष प्राचीन श्यामवर्णीय अतिशयकारी अति मनोज्ञ भगवान महावीर की प्रतिमा अन्य वैष्णव प्रतिमाओं के साथ प्राप्त हुई। स्थानीय लोगों की भावनानुसार वहीं जैन मंदिर बनाकर उसे स्थापित कर दिया गया है। इस मंदिर से ही प्रतिवर्ष महावीर जयंती की शोभायात्रा अजैन बंधुओं द्वारा प्रारंभ कर वासोकुण्ड तक जाती है। कोल्लाग सन्निवेश कूलग्राम है जहाँ महावीर ने प्रथम पारणा की थी। उनकी स्मृति में वहाँ सिंह-स्तम्भ बना है।

कुण्डग्राम/कुण्डपुर से वासोकुण्ड नामकरण के बारे में श्री राजेन्द्र सिंह, भूतपूर्व अध्यापक, वासोकुण्ड, ने बताया कि महावीर के जन्म स्थान के चारों दिशाओं में चार कुण्ड अभी भी बने हैं। छठ के दिन हम सभी पूजा करते हैं। कुण्डों के कारण कुण्डपुर-कुण्डग्राम नाम पड़ा। कुण्ड का नाम कुण्डवा से कुडवा हो गया। वासोकुण्ड नि-वासकुण्ड का संक्षिप्त नाम है। महावीर के नि-वास से वास और कुण्डग्राम का 'कुण्ड', दोनों मिलाकर वासोकुण्ड नाम प्रचलित हो गया।

विदेह देश के वज्जीकांचल एवं मिथिलांचल (पश्चिम बंग) क्षेत्र के लोकगीतों और कुलगीतों में सदियों से भगवान महावीर का नाम, उनका जन्म स्थल, जन्मतिथि, जन्म के समय रत्नों की वर्षा और जन्मोत्सव का वर्णन मिलता है जो दिगम्बर जैन आगम के वर्णन के अनुरूप है। चैत्र मास महावीर एवं राम का जन्ममास एवं वर्ष का प्रथम मास है। इस मास में बिहार में (विशेषकर विदेह में) चैतागीत रात्रिभर उल्लासपूर्वक गाये जाते हैं। इसमें सभी जाति एवं वर्ण के व्यक्ति सम्मलित होते हैं। इन लोकगीतों में भगवान महावीर धार्मिक सहिष्णुता और अविरोध भाव के जनक के रूप में मान्य किये गये हैं। सर्वेक्षण दिनांक ४-११-०४ में प्राप्त कुछ लोकगीत इस प्रकार हैं—

१. **वज्रिका** — भोजपुरी भाषा का चैतागीत, जो महावीर की जन्मभूमि से सम्बन्धित है, :

कहवाँ खरौना बौना खम्भा
अशोक बाटे काहे बाटे, वासोकुण्ड नगरिया हो रामा।

इहवां खरौना बौना खम्भा
अशोक बाटे यहाँ बाटे, वासोकुण्ड नगरिया हो रामा।
इहवां भइले महावीर जनमवां हो रामा।

भावार्थ - गीत प्रश्नोत्तर के रूप में है। खरौना पोखर (अभिषेक पुष्करिणी) बौना पोखर (बावन तालाब), अशोक स्तम्भ कहाँ हैं ? हे राम, इस वासोकुण्ड नगरिया में ही ये हैं। हे राम, इसी वासोकुण्ड नगर में महावीर का जन्म हुआ था।

२. श्रावणमास का बारहमासा लोकगीत, इसे वृद्ध महिलाएँ प्रातःकाल गाती हैं,:

आहे कौना नगरिया भइया,
महावीर जनम लिहले किये हइन माताजी के नाम है ?
वासोकुण्ड नगरिया में महावीर जन्म भइले
त्रिशला देवी माताजी के नाम है।
चइत महिना रामा तेरस इजोरिया में
हो खेला जय-जयकार है।
सोना जे बरसे रामा, हीरा जे बरसेला
मोती बरसे बौछार है।
अइसन समइया रामा, महावीर जनम भइले
नगर में होइवे जयकार है।

भावार्थ - भैया यह कौन सा नगर है ? क्या महावीर ने यहाँ जनम लिया है ? उनकी माताजी का क्या नाम है ? वासोकुण्ड नगर में महावीर ने जन्म लिया है, उनकी माताजी का नाम त्रिशला देवी है। हे रामा, चैत्रमास की तेरस शुक्लपक्ष (इजोरिया) में उनका जन्म हुआ था। सभी ने प्रसन्नतापूर्वक जय-जयकार की थी। उस समय बौछार रूप से सोना, हीरा, मोती आदि की बरसात हुई थी। ऐसे समय (रत्न वर्षा के समय), हे राम, महावीर ने जन्म लिया था और नगर में उनकी जय-जयकार हुई थी।

वासोकुण्ड के क्षत्रियों के कुलगीतों में महावीर

भगवान महावीर के क्षत्रिय वंशजों के पूजागृह में गृह-देवता सोखा (सिद्ध) बाबा का चिह्न है और बाहर के आले में महावीर बाबा का चिह्न है जो त्रिकोण रूप है और मिट्टी से बना है। चिह्नों के सामने प्रतिदिन शाम को दीपक जलाकर पूजा की जाती है। उनके समक्ष कुल गीत भी गाये जाते हैं। वे घरों में ताले नहीं लगाते ओर प्याज आदि जमीकंद नहीं खाते। शादी-विवाह और यज्ञोपवीत रस्म के समय 'बिलौकी' की रस्म होती है। इसमें द्वारचार के बाद वर को पालकी में गाजे-बाजे के साथ

अहल्य भूमि ले जाते हैं। वहाँ भगवान महावीर की पूजा-अर्चना की जाती है। मंगल की कामना की जाती है। शादी के समय निम्न गीत गाकर महावीर की पूजन की जाती है —

ऊपर सोखा बाबा के मंदिर में बने हैं, नीचे खड़े परिवार हैं
पूजब हम सोखा बाबा के।
ऊपर महावीर बाबा के मंदिर बने हैं, नीचे खड़े परिवार हैं
पूजब हम महावीर बाबा के।
कहाँ गेलिन किये भेलिन, गाँव मलिनिया फूलवा लेइ है
पिलवा रंग है, महावीर पूजन है।

भावार्थ - ऊपर सिद्ध (सोखा) बाबा के मंदिर हैं, नीचे परिवार के सभी सदस्य खड़े होकर उनकी पूजन करते हैं। ऊपर महावीर बाबा के मंदिर बने हैं, नीचे परिवार के सदस्य खड़े होकर पूजन करते हैं। गाँव की मालिन पीले रंग के फूल लेकर किस गली में भूल गयी, हम महावीर की पूजा करते हैं।

शादी के समय सोखा बाबा और महावीर को न्योते का गीत इस प्रकार है—

पहला नेवता हम सोखन बाबा को भेजली
आवन के जग देखने के,
अपने हाथ जग सम्हालन के।
दूसरा नेवता हम महावीर बाबा के भेजली
आवन के जग देखन के,
जग अपने हाथ सम्हालन के।

भावार्थ - शादी के अवसर पर पर हम पहला निमंत्रण सोखा बाबा को दे रहे हैं। वे आवें और हम सब की रक्षा करें। दूसरा न्यौता हम महावीर बाबा को दे रहे हैं। वे आवें और हम सब की रक्षा करें। वे सर्व जगत को जानने वाले सर्वज्ञ हैं।

वासोकुण्ड-वैशाली के जनमानस के रीति-रिवाज, शादी-विवाह एवं लोकगीतों में भगवान महावीर का पुण्य स्मरण और उनके सिद्धांतों का जीवन में पालन करना, वहाँ पर महावीर के अमिट प्रभाव की पुष्टि करता है, जो अद्वितीय एवं अद्‌भुत है। इससे यह सिद्ध होता है कि वासोकुण्ड ही महावीर की जन्म स्थली है।

- बी-३६६, ओ.पी.एम. कालोनी, अमलाई, जिला-शहडोल (म.प्र.)

शहीद अण्णा पत्रावले

वतन के जंग-ए आजादी में यूं तो शहीद हुए हजारों।
पर जिनके नाम लिये जाते हैं, वे अंगुली पै हैं यारो।।

यहाँ पर एक ऐसे ही शहीद का जिक्र किया जा रहा है जिनसे कम लोग ही परिचित हैं। वह हैं शहीद अण्णा पत्रावले। उनका जन्म २२ नवम्बर, १९२५ ई., को महाराष्ट्र के जिला सांगली के हातकणगले गाँव में अपने नाना के घर हुआ था। उनके पिता एगमद्राप्पा व्यंकाप्पा जैन धर्मानुयायी थे। उनकी माता का नाम इन्दिरा था। बचपन से ही पत्रावले होनहार,. स्वावलम्बी और स्वतन्त्रता-प्रेमी थे। उन्हें अपने परिवार से सत्यवादिता, अहिंसा, प्रामाणिकता और दयालुता के सुसंस्कार प्राप्त हुए थे। काठी छोटी होते हुए भी व्यायाम द्वारा उनका शरीर बलिष्ठ था और चेहरा कान्तियुक्त। सन् १९३८ ई. में मराठी की सातवीं कक्षा उत्तीर्ण कर उन्होंने सांगली हाईस्कूल में अंग्रेजी की पहली कक्षा में प्रवेश लिया। उनकी कुशाग्र बुद्धि के कारण उन्हें सातवीं कक्षा के परीक्षा परिणाम के आधार पर हाईस्कूल में पढ़ने हेतु छात्रवृत्ति प्राप्त हुई थी।

फरवरी १९४२ ई. में जब वह अंग्रेजी की चौथी कक्षा की वार्षिक परीक्षा की तैयारी कर रहे थे उन्हें महात्मा गांधी के 'हरिजन' साप्ताहिक से संगृहीत चुनिंदा लेखों की एक छोटी सी पुस्तक पढ़ने का सुयोग मिला। पुस्तक पढ़कर उनके विचारों में क्रान्ति आई और वह देश को आजाद कराने के लिये छटपटाने लगे। इसी विचार क्रान्ति का यह परिणाम था कि अप्रैल में हुई वार्षिक परीक्षा में वह अपनी प्रत्येक उत्तर-पुस्तिका में ये वाक्य लिख आये, "हे गुरुजनों ! नौकरियां छोड़ दो और देश को स्वतंत्र कराने के लिये क्रान्ति कार्य में शामिल हो जाओ।"

अप्रैल १९४२ ई. में वार्षिक परीक्षा देने के अनन्तर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये कार्य योजना में जुट जाना उनका जीवन क्रम बना। उस समय रेलवे, सरकारी कार्यालयों और सम्पत्ति को क्षति पहुंचाना, प्रशासनिक यंत्रणाओं का पर्दाफाश करना और सरकारी पैसे की लूट करना स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रमुख कार्यक्रम होते थे। उन कार्यक्रमों में अण्णा पत्रावले आगे बढ़कर भाग लेते थे। उसी वर्ष अगस्त माह में 'भारत छोड़ो आंदोलन' छिड़ा। एक दिन सांगली स्टेशन चौक पर हो रही आन्दोलनकारियों की सभा पर पुलिस ने गोली चलाई जिसमें अनेक व्यक्ति घायल हो गये। घायलों की

सेवा-सुश्रुषा का गुरुतर भार कौन ले, यह यक्ष प्रश्न सबके सामने मुँह बाये खड़ा था। अण्णा पत्रावले आगे बढ़े और बोले, -"यह कार्य हम करेंगे"। पुलिस को जब पता चला तो पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उनके पिता पर बड़े जुल्म ढाये, यहाँ तक कि उनका घर-बार तक जब्त करने की धमकी दी, पर भारत माँ के चरणों में अपना जीवन समर्पित करने वाले अण्णा पत्रावले डरे नहीं, अपितु और अधिक खुलकर आन्दोलनकारियों का साथ देने लगे।

सांगली की बुरूड गली में आन्दोलनकारियों की गुप्त बैठक चल रही थी। अण्णा पत्रावले भी उस बैठक में उपस्थित थे। पुलिस को किसी प्रकार इसकी भनक लग गई। पुलिस सूंघती हुई पहले गली और फिर उस मकान तक पहुँच गइ जहाँ बैठक हो रही थी। अचानक छापा मारा और सभा में उपस्थित सभी को पकड़ लिया। पकड़े गये सभी व्यक्तियों को सात माह की सजा देकर सांगली जेल में बन्द कर दिया गया। बसन्त दादा पाटिल (जो बाद में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री भी बने) भी साथ ही जेल में बन्द हुए।

जेल में इन आन्दोलनकारियों को दारुण यातना दी गई। वे उन भीषण कष्टों से उतना सन्तप्त नहीं थे जितना कि बेचैन थे वे अपने हृदय में धधक रही देश को आजाद कराने की क्रान्ति-ज्वाला से। जेल में उन्हें चैन नहीं था और वे किसी तरह बाहर निकल कर उस क्रान्ति की ज्वाला को प्रज्ज्वलित रखना चाह रहे थे। वे जानते थे कि भागने पर पकड़े गये तो मौत ही मिलेगी, किन्तु उनका मानना था कि उनकी मौत के बाद भी देश आजाद हो जाये तो उनकी मौत सार्थक होगी।

सोलह आन्दोलनकारियों ने जेल से भागने की योजना बनाई। योजनानुसार लघुशंका का बहाना बनाकर पहरेदार को दरवाजा खोलने को कहा गया। दरवाजा खुलते ही पहरेदार की बन्दूक छीन ली गई और वे नवयुवक जेल की दीवार से छलांग लगाकर भागे। पता लगते ही पुलिस भी उनके पीछे-पीछे भागी तो उनमें से कोई कृष्णा नदी में डुबकी लगा गया तो कोई सांगलवाड़ी की ओर भागा। कुछ हरिपुर की ओर प्रयाण कर गये। अण्णा पत्रावले को तैरना नहीं आता था, अतः वह समडोली की ओर भागे। जुलाई का महीना था और बरसात के कारण मिट्टी गीली थी। अण्णा पत्रावले के पैर मिट्टी में सन गये थे। दौड़ने की बात तो दूर चलने में भी कठिनाई हो रही थी। तभी धांय--धांय---गोली चली और अण्णा पत्रावले वहीं ढेर हो गये। वह क्रूर दिन था २४ जुलाई, १९४३ ई.।

सत्रह वर्ष की अल्पवय में देश की स्वतंत्रता के लिये अपने प्राण न्यौछावर करने वाले इस अमर शहीद की पुण्य स्मृति में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त सांगली के एक चौक को **'हुतात्मा अण्णा पत्रावले चौक'** नाम दिया गया और वहीं हाईस्कूल के निकट उनकी मूर्ति स्थापित की गई। Who's Who of Indian Martyrs, Vol. I, पृष्ठ २७२ पर, **सन्मति** (मराठी), अगस्त १९५७ में, डॉ. कपूरचन्द जैन के **स्वतंत्रता संगाम में जैन** (प्रथम खण्ड) में पृष्ठ ७०-७१ पर तथा प्राचार्य डी. डी. मगदूम द्वारा संपादित **भारतीय स्वातंत्र्ययलढयातील जैनांचे योगदान** में पृ. ३३-३५ पर इस स्वतंत्रता सेनानी की शहादत की कथा वर्णित है।

इस वर्ष २२ नवम्बर को अमर शहीद अण्णा पत्रावले की ८१ वीं जन्म जयंती है। इस अवसर पर भारत माता और जैन समाज का मस्तक गर्व से उन्नत करने वाली उस पुण्यात्मा को हमारा भी सादर नमन है।

- अंशु जैन 'अमर'

पंचकल्याणक कार्यक्रमों में बोलियों का औचित्य

आजकल पंचकल्याणकों आदि के कार्यक्रमों में विविध क्रियाओं के लिए पदों (भगवान के माता-पिता, सौधर्म इन्द्र, तथा अन्य देवी देवता, राजे-महाराजे आदि) तथा कलशों आदि के लिए बोलियां लगाने की प्रथा प्रचलित है। अनेक लोग इसे उचित नहीं मानते। जैनेतर बंधुओं में बहुधा यह सुनने में आया कि क्या जैन धर्म पैसों से खरीदा जाता है। इसमें संदेह नहीं कि धन एकत्रित करने के लिए बोलियां कराना एक सशक्त माध्यम है, किन्तु इससे दान का महत्व कम होता है। लोग पुण्य लाभ की भावना से कम, यश लाभ के लिए अधिक उत्सुक दिखाई पड़ते हैं। इससे यह तो तय करना आसान हो जाता है कि कौन व्यक्ति कौन सा पद ग्रहण करे अन्यथा पदों के लिए विवाद उत्पन्न होने की संभावना हो सकती है, किन्तु यह हानि भी है कि जो व्यक्ति धनवान न हो वह ऐसे कार्यक्रमों से दूर रहने लगता है और पुण्य लाभ नहीं ले सकता। इसके अलावा इस प्रथा से मान कषाय का पोषण होता है। साथ ही लम्बे समय तक बोलियां चलने पर उस धार्मिक आयोजन का मुख्य भाव समाप्त हो जाता है। इसके फलस्वरूप बहुधा अधिकांश लोगों में धर्मध्यान की भावना के बजाय आर्तध्यान या रौद्रध्यान भी उत्पन्न हो सकता है।

- श्री नरेश चन्द्र जैन, राजेन्द्रनगर, लखनऊ

संतिणाहत्थुई

(शांतिनाथ स्तुति)

- मुनिश्री सुनील सागर

गणहर किद पूयं सव्व लोगस्ससारं,
कलिद करुण भावं संत कामप्पसारं।
सुर-मणुरयाजणाणं पुज्ज पादारविंदं
सयल गुण णिहाणं णमामि संतिणाहं।।१।।

अर्थ- गणधर कृत पूजा को प्राप्त सर्वलोक के सार, करुणाभावों से पूर्ण, काम के प्रसार को शांत करने वाले, सुर तथा मनुष्यजनों द्वारा पूजित पद कमल वाले तथा सकल गुणों के धाम शांतिनाथ भगवान को नमन करता हूँ।

णयण जुअल सेटठं तिव्वं कारूण्ण पुण्णं,
लसिद मुह मणुण्णं वाल आइच्च वण्णं।
अतुल बल सजुत्तं, दिव्य रम्मं सुदेहं
सयल गुण णिहाणं णमामि संतिणाहं।।२।।

अर्थ- जिनके नयन युगल श्रेष्ठ तीव्र कारूण्य से पूर्ण हैं, जिनका मनोज्ञ सौम्य मुख उगते हुए सूर्य के समान सुशोभित है, जिनका दिव्य स्मरणीय शरीर अतुल बल युक्त है तथा जो समस्त गुणों के निधान हैं, उन शांतिनाथ भगवान को मैं नमन करता हूँ।

विगलिद मद मोहं ते जहाजादरूवं,
णयणपथ मुपात्तं संतिरासिं ददातु।
चरण कमल झाणं हणेदि सव्वपावं,
सयल गुण णिहाणं णमामि संतिणाहं।।३।।

अर्थ- अच्छी तरह गला दिया है मद व मोह को जिन्होंने ऐसे वे यथाजात रूप नयन पथ को प्राप्त होकर शांति-राशि को प्रदान करें। जिनके चरण कमलों का ध्यान सब पापों को नष्ट करता है, उन सकल गुणों के निधान शांतिनाथ भगवान को मैं नमन करता हूँ।

मयण-णिवदिणाहं सोलसं तित्थणाहं
भुवण तिलय रूवं धीर-वीरं गहीरं।
पुण भरह विजित्ता अप्परूवे वित्तिट्ठं,
सयल गुण णिहाणं णमामि संतिणाहं।।४।

अर्थ- मदन अर्थात् कामदेव, नृपतिनाथ अर्थात चक्रवर्ती व सोलहवें तीर्थंकर, धीर-वीर-गंभीर व भुवन के तिलक स्वरूप तथा भरतक्षेत्र को जीतने के बाद पुनः जो आत्मस्वरूप में स्थित हुए उन सकल गुणों के निधान शांतिनाथ भगावन को मैं नमन करता हूँ।

णिहिल कलुस कुंडं चित्त दोसेहि पुण्णं
ण हि गुणगण गीदं भाविदं णो कदानि।
तदपि सरण-पत्तं दुहादो रक्खदे जो
सयल गुण णिहाणं णमामि संतिणाहं।।५।।

अर्थ- जो जीव संपूर्ण कलुषताओं का कुंड है, जिसका चित्त दोषों से पूर्ण है, जिसने कभी भी जिनदेव का गुणगान अथवा ध्यान नहीं किया, ऐसे शरणागत जीव की भी जो दुखों से रक्षा करते हैं, उन सकल गुणों के धाम श्री शांतिनाथ भगवान को मैं नमन करता हूँ।

महावीर-गुणगान

ध्यान धरूं नित प्रति करूं, महावीर गुणगान।
गान मध्य भगवान की, शिक्षायें हों ध्यान।।
शुद्ध रखो पर्यावरण, बन कर बन्धु प्रबुद्ध।
'बुद्धदेव' 'जिन' आदि के, हैं उपदेश विशुद्ध।।
आह! वृक्ष वन-काट क्यों चले विपति की राह।
राह रोकते प्रलय की, विटप बन्धु झूलते आह।।।
भोग मांस का है घृणित, उपजाता बहु रोग।
रोग न हों इस हेतु ही, करो सात्विक भोग।।
दीन दुखी रोगी दलित, गो सेवा में लीन।
लीन जो परहित में हुआ, दिखा नहीं वह दीन।।
प्यार मिले संसार में, करो यही मनुहार।
हार जीत कुछ भी नहीं, यही बताता प्यार।।
वर्ग भेद को त्याग कर, रचें स्नेह के सर्ग।
सर्ग स्नेह सुख तब बने, मिटें जभी सब वर्ग।।

- श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध', सआदतगंज, लखनऊ

भावों से सुख धन मिलता है

अब तक अनगिन भव बदले हैं,
पाकर जिन्हें भाव मचले हैं,
मचल उठी जीवन परिपाटी, घर-घर वासी नित पलता है।
नाहक भावों को विकारते, भावों से सुख धन मिलता है।।१।।

दिन बीते, बीती राते हैं,
नयी-नयी, झेलीं घातें हैं,
घात और प्रतिघात यहाँ के, सहते सारा भव ढलता है।
नाहक भावों को विकारते, भावों से सुख धन मिलता है।।२।।

मनोभाव को शुद्ध कीजिये,
प्रेमपूर्वक अमिय पीजिये,
विषम बयारें गर न बहीं तो, समता का शतदल खिलता है।
नाहक भावों को विकारते, भावों से सुख धन मिलता है।।३।।

दशलक्षन का करें चिन्तवन
और करें आतम आराधन,
संचित सारा मोह-मैल अब, धीरे-धीरे सब गलता है।
नाहक भावों को विकारते, भावों से सुख धन मिलता है।।४।।

वीतराग को शीश नवायें,
सोलहकारण मन से भायें,
दूषण दूर भागते सारे, तप-संयम का क्रम चलता है।
नाहक भावों को विकारते, भावों से सुख धन मिलता है।।५।।

– विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्रसागर प्रचंडिया
मंगल कलश, सर्वोदयनगर, अलीगढ़

बिन्दु चला है सिन्धु से मिलने

बिन्दु चला है सिन्धु से मिलने
देख प्रकृति मुसकाई,
नहीं मिलन आसान पथिक है
कठिन परीक्षा आई।
युग युग से यह चेतन तेरा
बंध कर्म बन्धन में,
लोभ प्रलोभन भ्रम आकांक्षा
अहं भाव जकड़न में,
पैरों में हैं पड़ी बेड़ियां
कर्मों की दुखदायी,
कैसे कदम बढ़ेंगे आगे
बोलो मेरे भाई, बोलो मेरे भाई।
माना कदमों को जकड़ा है
युग युग के बंधन ने,
स्वतः बेड़ियां टूट चुकी हैं
आज आत्म चिंतन से,
आत्म सूर्य से महामिलन को
आत्म ज्योति अकुलाई,
रोक सकेगा कौन हमें अब
पथ पर मेरे भाई, पथ पर मेरे भाई।
जीवन के मद भरे प्रलोभन
रत्न जटित सिंहासन,
रंभा और मेनकाओं के
नयनों के आमंत्रण,
ठुकरा कर तुम आगे कैसे
बढ़ पाओगे भाई, बढ़ पाओगे भाई।
आत्म मिलन चिर सुख के
सम्मुख सारे सुख न्योछावर,
रंभा और मेनकाओं का
मद तो है क्षण भंगुर,
आत्म मिलन में ही चिर सुख की
है अनुभूति समाई।
जीवन पथ पर और न आगे
भटकेंगे हम भाई, भटकेंगे हम भाई।

– डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत', लखनऊ

(पृष्ठ ३७ का शेषांश)

❖ जैन दर्शन अनेकान्तवादी है। इस दृष्टि से विश्वरूपदर्शन पूर्णतः असत्य है, ऐसा भी हम नहीं मान सकते। उसमें भी शक्यता के कुछ अंश तो हो सकते हैं। जैन दर्शन ने वासुदेव कृष्ण के व्यक्तित्व को और यौगिक शक्ति को मान्यता दी है।

जैन इतिहास-पुराणों में भी अद्‌भुतता का दर्शन कई बार होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से तो नहीं, लेकिन काव्यात्मकता, अद्भुतता तथा भक्तिमार्ग की प्रभावना की दृष्टि से इस विश्वरूप दर्शन को हम उनमें देख सकते हैं।

संदर्भ –१.**महाभारत** भीष्मपर्व, अध्याय क्र. २५ से ४२; २. **गीता** अध्याय क्र. २;
३. **गीता** अध्याय क्र. ४, ६, ७, ९, १०, १३, १४, १५, १६;
४. **गीता** अध्याय क्र. ३, ५, ८, ११, १२, १७, १८ ; ५. **गीता** १०.४१;
६. **गीता** ११.४ ७. सातवलेकर, **गीता** अध्याय क्र. ११ व्याख्या;
८. **आचारांग** १५.३९(७७३), **स्थानांग**-९.६२ ; ९. **गीता** ११.८ ;
१०. **आचारांग** २.१५.१, **महावीरचरियं** (गुणचंद्र पृ. ९)

८४४, शिवाजीनगर, पुणे- ४११ ००४

जीवन अल्प विराम

कौन सका है रोक, जिसका जाना है नियत।
व्यर्थ मनाना शोक, अजर-अमर है जीव यह।।
नश्वर तन दुखमूल, पंचतत्व से जो रचित।
मिल जाता है धूल, मात्र नियति इसकी यही।।
गर्व न कर तू मूढ़, यौवन पर धन धान्य पर।
समझ रहस्य निगूढ़, अचिर यहाँ की वस्तु हर।
क्या होगा परिणाम, किसने देखा है यहाँ।
जीवन अल्प विराम, आज अगर तो कल नहीं।।
मत कर सोच-विचार, जो होना है हो रहा।
चिन्तन बना उदार, चिन्ता से रह दूर तू।।
तू उससे है भिन्न, दिखलाई जो दे रहा।
मत हो पगले! खिन्न, जो है वह तू भी वहीं।।
क्षणभंगुर संबंध, जितने भी हैं विश्व में।
कुछ दिन का अनुबंध, तदुपरान्त निःशेष सब।।
सभी स्वार्थ के मीत, प्रीति दिखावा है यहाँ।
छिपी हार में जीत, अद्‌भुत यह संसार है।।
स्मृतियों का कोष, सम्बल तेरा है यही।
दे न किसी को दोष, भाग्य फलित होता सदा।।
होनी कर स्वीकार, अनहोनी होनी नहीं।
करना क्या प्रतिकार, जो तेरे वश में नहीं।।
विश्व एक बाजार, जिसका ओर न छोर है।
साँसों का व्यापार, युगों-युगों से चल रहा।।
लाख करे उपचार, किन्तु न होता लाभ कुछ।
जीवन जाता हार, मौत जीत जाती यहाँ।।
रंगमंच छविवन्त, यह जग एक विशालतम।
है अभिनय जीवन्त, जिसका वह ही सफलतम।।
पूरी कर निज आयु, जितनी तुझको है मिली।
सुख या दुख की वायु, करे नहीं विचलित तुझे।।
करना है जो काम, कर ले, देर लगा नहीं।
हो जाएगी शाम, पता नहीं किस ठौर कब ?

- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, सिविल लाइंस, सीतापुर

साहित्य-सत्कार

(१) रात्रि भोजन : एक वैज्ञानिक दृष्टि: ले. ऐलक निर्भयसागर; प्र. बी.सी. जैन, सागर (म.प्र.); अक्टूबर २००५ (चतुर्थ संस्करण); पृ.१२२; मूल्य रु. २५/-

पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी के शिष्य ऐलक श्री निर्भयसागरजी द्वारा वर्ष १९९९ में रचित पुस्तक वर्तमान आधुनिक युग में रात्रि भोजन के दुष्परिणामों से परिचित कराती है। पुस्तक में यत्र-तत्र साभार सन्दर्भित श्री इन्द्रलाल शास्त्री, विद्यालंकार, जयपुर, की पुस्तक **रात्रिभोजन** को देखने और पढ़ने का सुयोग भी प्राप्त हुआ जो इस विषय पर एक प्रामाणिक पुस्तक है। पूज्य ऐलक श्री की प्रस्तुत कृति अपने नाम भेद के अनुसार ही पूर्व पुस्तक से अपने पृथक् अस्तित्व एवं महत्व को स्थापित करती है। 'रात्रि भोजन का शरीर पर प्रभाव' अध्याय पू. ऐलक श्री की वैज्ञानिक अभिरुचि एवं दृष्टि के साथ विषयगत गहन ज्ञान-शोध को प्रदर्शित करता है। विषय-विवेचन में अपनाया गया दृष्टिकोण रात्रि भोजन त्याग एवं पुस्तक दोनों को जैनेतर समाज में भी ग्राह्य बनाने में सफल सिद्ध होंगे। पुस्तक का कलेवर आकर्षक है।

- अंशु जैन 'अमर'

Fundamentals of Jainism: by Sri Jagdish Prasad Jain 'Sadhak'; Pub. Radiant Publishers, E-155, Kalkaji, New Delhi-110019; 2005; pp. 345+XX; price Rs. 500/-.

The book dealing with the fundamentals of Jainism is divided into 12 chapters and is supplemented by Select Bibliography, Author Index, Title Index, Word Index and Subject Index. It starts with a discussion of the antiquity of Jainism as one of the oldest religions of the world and proceeds with the philosophic concept of the Self; and enumeration as well as effect of the instincts, emotions and passions inherent in human nature. The doctrines of Samyak-Darshan, Anekant, Ahimsa and Aparigraha as enunciated in Jainism have been suitably explained. The stress laid on moral and spiritual discipline and for compassionate living and also for environmental protection in this religion have also been outlined. The doctrine of Karma and the liberation and divinity theroy in Jainism have also been explained.

The learned author has lucidly presented the fundamental concepts and basic principles of Jainism in modern context in this work. He has tried to make it devoid of sectarian approach and free from unnecessary metaphysical details. It is heartening to note that the work has been adjudged as the best book on Jain religion and philosophy in English in January 2004 by the Bhagwan Mahaveer Foundation, Chennai.

There are, however, some factual errors which could have been avoided. It may be noted that the language of the Hathigumpha Inscription is not Apabhransha and in this inscription there is no reference to any idol of Rishabhadeva. All the same, for the pains taken in presenting this work the author deserves our congratulations.

ABC of Jainism : by Sri Shanti Lal Jain; Pub. Maitree Samooh c/o Sri P. L. Benara, 1/205/iv, Professor Colony, Hari Parvat, Agra; Aug. 2004 (Revised 3rd ed.); pp. 54+vii; price Rs. 40/-.

The first edition of 1998 of this book was reviewed in Shodhadarsh 42 on page 307. Since then the book has been revised thrice and updated to make it more useful to students. Some of the lessons have bee deleted and some additonal information added in most of the lessons. Lessons on 'Jain Concept of Karma' and 'God and Universe' have been rewritten and a new prayer has been added at the end. The book is written in question-answer style in simple language and is divided into nine lessons besides giving the famous Meri Bhavana of Pt. Jugal Kishore Mukhtar 'Yugveer' with its English rendering, and a prayer at the end. The lucid treatise will benefit the English speaking learners of Jainism. Addition of some sketches has improved the layout of the book.

समयसार-ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका : टीकाकार डॉ. हुकमचंद भारिल्ल; प्र. श्री कल्याणमल राजमल पाटनी सिद्ध चेतना ट्रस्ट, कोलकाता, एवं पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर-१५; द्वि.सं. अगस्त २००६; पृ. २०+६२८; मूल्य रु. ५०/-.

विक्रम की प्रथम शती में हुए भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा प्राकृत भाषा में गाथाओं में प्रणीत अध्यात्म ग्रन्थ **समयसार** पर लगभग एक हजार ईस्वी में हुए आचार्य

अमृतचन्द्र ने संस्कृत में **आत्मख्याति** टीका और स्वतंत्ररूप से **समयसार कलश** की रचना की थी। उनसे तीन सौ वर्ष पश्चात हुए आचार्य जयसेन ने संस्कृत में **तात्पर्यवृत्ति** टीका रची। मध्यकाल में पाण्डे राजमल्ल ने हिन्दी में **बालबोधनी टीका** लिखी और १६३६ ई. में आगरा में पं. बनारसीदास ने अपना **समयसार नाटक** पूर्ण किया। गत शती में हुए आध्यात्मिक सन्त कानजी स्वामी तो आत्मा का निरूपण करने वाले इस ग्रन्थ से इतना प्रभावित थे कि उन्होंने इसका आद्योपान्त सम्यक् अध्ययन कर अनेक बार इसका प्रवचन किया, और पं. जगन्मोहनलाल सिद्धान्तशास्त्री ने **अध्यात्म-अमृत-कलश** की रचना की। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक अध्यात्मरसिकों के लिये यह ग्रन्थ आज तक आकर्षण बिन्दु बना हुआ है। इसी कड़ी में विद्वद्वर डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की लेखनी से प्रसूत प्रस्तुत **ज्ञायक भावप्रबोधिनी टीका** है। इसमें ग्रन्थराज **समयसार** की मूल गाथाएं और उन पर अमृतचन्द्राचार्य की **आत्मख्याति टीका** तथा गाथाओं पर उनके द्वारा संस्कृत में रचित कलश तो दिये ही गये हैं, साथ ही कलशों का हिन्दी पद्यानुवाद एवं सहज सुबोध भाषा में हिन्दी में टीका की गई है। **समयसार** के अध्येताओं के लिये प्रस्तुत टीका अपना अलग आकर्षण रखेगी।

अष्टपाहुडः एक अध्ययन : लेखक डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल; प्र. समन्वयवाणी जिनागम शोधसंस्थान, १२६, जादोन नगर 'बी', स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर-१८; द्वि.सं. जुलाई २००६; पृ. ८८; मूल्य रु. १०/-

उपर्युक्त भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित कृतियों में एक ग्रन्थ **अष्टपाहुड** भी है। उसमें दर्शन, सूत्र, बोध, भाव, मोक्ष, चारित्र, लिंग और शील इन आठ विषयों (पाहुड़ों) पर प्राकृत भाषा में स्वतन्त्र गाथाएं हैं जिनमें समीचीन जीवन सिद्धान्तों का अनूठा विवेचन हुआ है। समग्र जैन दर्शन का सार समेटे उस आध्यात्मिक ग्रन्थ का गहन अवगाहन कर और उसमें प्रतिपादित विषय को आत्मसात कर विद्वान मनीषी डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल ने प्रत्येक पाहुड की सम्पूर्ण गाथाओं को विविध शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत कर सरल-सुबोध भाषा-शैली में उनका विवेचन किया है। **अष्टपाहुड** की विषय वस्तु को समझने में अध्येताओं को डॉ. बंसल द्वारा प्रस्तुत यह अध्ययन सहायक होगा।

पुरुषार्थ देशना : संपादक मुनि श्री विश्ववीरसागर; प्र. सुभाष कपूरचंद जैन, विद्यासागर विचार मंच, मुधोलकर पेठ, अमरावती (महा.); २००६; पृ. ५३४+१६; मूल्य रु. ३००/-.

दसवीं शती ई. में हुए आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने **पुरुषार्थसिद्धियुपाय** अपरनाम **जिनप्रवचन रहस्य कोष** ग्रन्थ की रचना की थी। संस्कृत में २२६ आर्या छन्दों और पांच अधिकारों में निबद्ध इस ग्रन्थ में सम्यक्त्व का विवेचन और सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र, सल्लेखना धर्म तथा सकल चारित्र की व्याख्या की गई है। निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, हिंसा-अहिंसा का गूढ़ विवेचन करने वाले इस आध्यात्मिक ग्रन्थ का मनन कर मुनि श्री विशुद्धसागर ने विदिशा में जो प्रवचन दिये थे उन्हें संकलित-संपादित कर मुनि श्री विश्ववीरसागर ने प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत संकलन में मूल कृति के पद्यों के साथ उनका अन्वयार्थ और विशद भाष्य सरल भाषा में दिया गया है, जो अध्येताओं को **पुरुषार्थसिद्धियुपाय** ग्रन्थ का हार्द समझने में सहायक होगा।

अनुभूति एवं दर्शन (मुक्त काव्य संकलन) : प्रस्तुति साध्वी रुचिदर्शनाश्री; प्र. प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर (म.प्र.); २००६; पृ. ५६; मूल्य रु. २०/-

अनुभूति एवं दर्शन अपरनांम **सत्यानुभूति** में साध्वीश्री ने अनुभूति, जैन दर्शन और भारतीय दर्शन एवं चिंतन इन तीन खंडों में २६ मुक्तक रचनाओं के माध्यम से जैन धर्म और दर्शन के गूढ़तम रहस्यों को व्यक्त करने का श्लाघनीय प्रयास किया हैं। संकलन के सम्पादन का श्रेय डॉ. सागरमल जैन को है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त निम्नलिखित साहित्य की प्राप्ति साभार स्वीकार की जाती है :

(क) डॉ. जगदीश प्रसाद जैन 'साधक द्वारा संपादित और जैन मिशन, ई-१५५, कालकाजी, नई दिल्ली-११००१६ द्वारा सन् २००५ ई. में प्रकाशित निम्नलिखित ८ पुस्तिकाएं जिनमें प्रत्येक का मूल्य रु. ५/- है :- (१) **पुण्य का वास्तविक स्वरूप**; (२) **भगवान महावीर का धर्म**; (३) **सुखी होने का उपाय**; (४) **धर्म का वास्तविक स्वरूप**; (५) **तनाव से मुक्ति और शांति कैसे पायें** ?; (६) **जैनधर्मः व्यक्तिस्वातंत्र्य और स्वावलम्बन का धर्म तथा क्रमबद्ध पर्याय रूपी एकान्तनियतिवाद : एक समीक्षा**; (७) **करम गति टाली नाँहि टलै** ?; तथा (८) **सर्वज्ञता और नियतिवादः एक समीक्षा**।

(ख) **उड़ीसा में जैन धर्म** : ले. प्रो. लालचन्द जैन; प्र. जोरावरमल संपतलाल बाकलीवाल, चावलीया गंज, कटक (उड़ीसा); जून २००६, पृ. xiv +१४४; मूल्य रु. ५०/-

(ग) **आवश्यकता से अधिक रखने वाला चोर है** : ले. प्रो. के. सी. गुप्ता (इंजी.); प्र. जैन ब्रदर्स, १६/८७३, ईस्ट पार्क रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-११० ००५; जून २००६; पृ. ७२; मूल्य रु. ३०/-

(घ) **सत्य की खोज (भाग-२)** : ले. मुनि श्री'जयानंदविजय; प्र. श्री गुरु रामचंद्र प्रकाशन समिति, सदर बाजार, भीनमाल- ३४३०२६ (राज.); २००५; पृ. २३०

(ङ) **Preaching Paradise** : English translation of Pravachan-Parv, a compilation of twelve discourses delivered by Acharya Vidyasagar on Daslakshan Parv in 1985, by Sri S. L. Jain, Bhopal; Pub. Maitree Samooh; April 2006; pp. xi+144; price Rs. 40/-.

(च) **शब्दों का शहंशाह (खण्ड-१)** : ले. श्री प्रवीण शर्मा; प्र. तरुण क्रांति मंच ट्रस्ट, ७०, डिफेन्स एन्क्लेव, दिल्ली-६२; जुलाई २००६; पृ. ११६; मूल्य रु. ७०/-

(छ) **चारित्र चक्रवर्ती** : ले. पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर; प्र. श्री भारतवर्षीय दिगंबर जैन (श्रुतसंवर्द्धिनी) महासभा, ६०६, भण्डारी हाउस, ६१, नहेरू प्लेस, नई दिल्ली-११००१६; फरवरी २००६; पृ. ५८७; मूल्य रु. १५०/-.

- रमा कान्त जैन

प्रबुद्ध वर्ग की बीस पसंदीदा जैन पत्रिकाओं में शोधादर्श

दिशा बोध (मासिक, कोलकाता) के सम्पादक डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा ने हाल ही में समाज के प्रायः सभी वर्गों से चयनित वरिष्ठ विद्वान, सम्पादक, संस्था प्रमुख तथा वरिष्ठ समाज सेवियों को सात प्रश्न भेजकर जैन पत्रकारिता की वर्तमान स्थिति का एक सर्वेक्षण कराया और सर्वेक्षण के निष्कर्ष को पत्रिका के अगस्त २००६ के जैन पत्रकारिता विशेषांक में प्रकाशित किया। वर्ष २००६ में प्रकाशित १७३ दिगम्बर जैन पत्र-पत्रिकाओं की एक सूची भी दी गई है। भेजे गये प्रश्नों में एक प्रश्न यह भी था कि प्रबुद्धवर्ग चयनित क्रम में अपनी बीस पसंदीदा पत्रिकाओं के नाम सूचित करे। प्रसन्नता का विषय है कि **शोधादर्श** को इन पत्रिकाओं में चयनित किया गया है।

समाचार विमर्श

मिड डे मील में शामिल होगी मछली

केन्द्र सरकार ने सभी राज्य सरकारों को विद्यालयों में मिलने वाले मध्याह्न भोजन (मिड डे मील) में मछली को भी शामिल करने का निर्देश दिया है ताकि बच्चों में प्रोटीन एवं अन्य जरूरी पोषक तत्वों की आवश्यकता पूरी हो सके।

– **दैनिक जागरण,** लखनऊ, १७ सितम्बर, २००६

केन्द्र सरकार के ये निर्देश देश की अहिंसा प्रेमी एवं शाकाहारी बहुसंख्यक समाज की भावनाओं को आहत करने वाले हैं। स्कूली बच्चों को पौष्टिक आहार के लिये **मछली, अंडा या कोई अन्य सामिष पदार्थ के** स्थान पर पौष्टिक शाकाहारी भोजन की व्यवस्था किया जाना ही समीचीन होगा। केन्द्र सरकार इस सम्बन्ध में कृपया पुनर्विचार करे। खेद की बात है कि इन निर्देशों का कोई प्रतिवाद किसी जैन मंच से किया गया हो, यह हमारे देखने में अभी तक नहीं आया।

गुजरात धार्मिक स्वतन्त्रता (संशोधन) विधेयक, २००६

नवभारत टाइम्स, २० सितम्बर, २००६, में यह समाचार प्रकाशित हुआ है कि 'वर्ष २००३ में गुजरात सरकार ने धर्मान्तरण निरोधक अधिनियम बनाया था। चूंकि उस अधिनियम में यह स्पष्ट नहीं था कि धर्मान्तरण के लिये मजबूर करना किसे माना जाय और किन लोगों पर इसे लागू किया जाना चाहिये इसलिये वह अधिनियम लागू नहीं हो पाया। अब इस वर्ष गुजरात विधानसभा ने उस अधिनियम में संशोधन कर गुजरात धार्मिक स्वतन्त्रता (संशोधन) विधेयक ध्वनिमत से पास कर दिया। इस संशोधन विधेयक के तहत किसी भी व्यक्ति को एक ही धर्म के एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय में जाने को धर्मान्तरण नहीं माना जायेगा और उसके लिये उसें अनुमति नहीं लेनी होगी। इस संशोधन विधेयक के अनुसार, धर्मान्तरण का मतलब है, एक व्यक्ति के एक धर्म को छोड़कर दूसरा धर्म अपना लेना, लेकिन इसमें वह शामिल नहीं होगा जो एक ही धर्म के किसी सम्प्रदाय को छोड़कर उसी धर्म के दूसरे सम्प्रदाय को स्वीकार कर ले। इसका अर्थ यह है कि सरकार उस मामले में दखल नहीं देगी जबकि कोई शिया सुन्नी हो जाये या प्रोटेस्टेन्ट कैथोलिक बन जाये। यही सीमाएं हिन्दू, बौद्ध और जैन मतावलम्बियों पर लागू होंगी क्योंकि सरकार इन धर्मों को एक ही मानती है।

गुजरात विधानसभा में इस संशोधन विधेयक पर बहस के दौरान नेता विपक्ष ने संविधान की धारा २५, सुप्रीम कोर्ट द्वारा पहले दिये गये आदेशों, भारतीय अल्पसंख्यक समुदाय एक्ट और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग एक्ट के आधार पर जैन धर्म और बौद्ध धर्म को स्वतन्त्र धर्म बताते हुए इन 'धर्मों को हिन्दू धर्म के अन्तर्गत जोड़े जाने का विरोध किया था।'

जैन समाज में भी इस संशोधन विधेयक के इस मुद्दे पर गहरी प्रतिक्रिया और आक्रोश है। जैन धर्म और बौद्ध धर्म सनातन, वैदिक, वैष्णव, शैव और शाक्त आदि धर्मों से पृथक् और स्वतन्त्र धर्म हैं, यह निर्विवाद है। इन सबको एक धर्म का अंग मानना, कहना समीचीन नहीं है। वस्तुतः इस विधेयक में 'हिन्दू धर्म' शब्द का प्रयोग ही उचित नहीं है। यदि उसके स्थान पर भारतीय समाज के सनातन, वैदिक, वैष्णव, शैव, शाक्त, सिक्ख, जैन, बौद्ध आादि सभी धर्म कहा होता, तो समीचीन होता।

बलात् धर्मान्तरण पर रोक उचित है। धर्मान्तरण बलात, प्रलोभन द्वारा, स्वेच्छा से तथा महिलाओं के मामले में उनके दूसरे धर्मानुयायी से विवाह होने पर स्वतः हो जाता है। यहां यह ध्यातव्य है कि भले ही भारत में उद्भूत जैन धर्म और संस्कृति इतिहास काल के प्रारंभ से अपना पृथक् स्वतन्त्र अस्तित्व लिये इस देश के अन्य धर्मों और संस्कृतियों के साथ हिलमिलकर पल्लवित-पुष्पित होती रही है, जैन धर्मानुयायियों के बेटे-बेटियों का विवाह जैनेतर भारतीय धर्म-समाज में होता रहा है और इस प्रकार विवाह के कारण हुआ धर्मान्तरण अभी तक अवैध नहीं माना जाता रहा है।

मुस्लिम, ईसाई और पारसी मूलतः विदेशी धर्म हैं, किन्तु भारत में उद्भूत एवं पल्लवित-पुष्पित अन्य धर्म वृहद् भारतीय समाज का अंग हैं। किसी भी भारतीय धर्म के किसी भी अनुयायी का इस्लाम, ईसाई या पारसी धर्म को अपनाना अथवा इन धर्मों के अनुयायियों का अपने से इतर धर्म को अपनाना धर्मान्तरण की परिधि में आता है।

यदि जैन समाज वृहद् भारतीय समाज से अपने को सर्वथा अलग रखे जाने का आग्रह करेगा, तब क्या वह जैनेतर भारतीय धर्म-समाज के साथ होने वाले अपने बेटे-बेटी के विवाह सम्बन्धों के अवसर पर धर्मान्तरण के नाम पर राज्य सरकार की पूर्वानुमति लेना पसन्द करेगा, यह यक्ष प्रश्न समाज नेताओं के लिये ठंडे दिमाग से सोचने का विषय है।

नवरात्र में कुलदेवियों की पूजा-अर्चना

नवरात्र में कुल देवियों की पूजा अर्चना के क्रम में अखिल भारतीय भंसाली समाज की ओर से दादी माता के मंदिर, भण्डारी भाईपा की ओर से कागा में स्थित आशापुरा माताजी का मंदिर, श्री ओसवाल सिंघवी भाईपा संगठन की ओर से अखेराज जी के तालाब स्थित नागदादासा-दादीसा मन्दिर, छाजेड़ भाईपा की ओर से विरामी स्थित भुवाल माताजी मन्दिर में पाटोत्सव, यज्ञ, हवन, पूजा-अर्चना, आरती आदि विविध आयोजन हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुए।

- **ओसवाल महिमा** (जोधपुर) अक्टूबर २००६, पृ. २

उपर्युक्त समाचार राजस्थान में श्वेताम्बर जैन ओसवाल समाज से सम्बन्धित है। इससे विदित होता है कि उक्त समाज में जिनेन्द्र के अतिरिक्त जैनेतर समाज की भांति नवरात्र में कुलदेवियों, नाग आदि की सार्वजनिक पूजा-अर्चना करने और यज्ञ-हवन आदि करने की परम्परा है। इस समाचार से यह जिज्ञासा हुई कि क्या यह सब श्वेताम्बर आम्नाय में धर्मसम्मत है और धर्माचार्यों का इसको समर्थन प्राप्त है।

सुप्रीम कोर्ट की जैन मंदिर ढहाने पर फिलहाल रोक

नयी दिल्ली, १५ अक्टूबर। सुप्रीम कोर्ट ने मुम्बई में कुर्ला स्थित जैन मंदिर को ढहाये जाने पर तीन महीने की रोक लगा दी है। उच्चतम न्यायलय ने कहा कि अधिकृत योजना में बदलाव होने से ढांचा गिराने की कार्रवाई को न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता।

न्यायमूर्ति ए आर लक्ष्मणन और न्यायमूर्ति तरुण चटर्जी ने ११ अक्टूबर के फैसले में अपीलकर्ता मुनि सुयरात स्वामी जैन एसएमपी संघ की अर्जी स्वीकार करते हुए अदालत ने कहा कि वह प्रतिवादी पक्ष के दावे के गुण-दोष पर विचार नहीं कर रही है। प्रशासन मामले की जांच-पड़ताल कर अपीलकर्ता को कानून के तहत उचित रियायत दे सकता है। न्यायालय ने प्रतिवादी आयुक्त को निर्देश दिया कि वह वादी को अपनी दलीलें पेश करने का मौका देने के बाद गुणदोष के आधार पर तीन महीने में मामले का फैसला करे। इस दौरान मंदिर गिराया नहीं जाएगा।

मंदिर परिसर के निर्माण का प्रस्ताव मंजूरी के लिए बीएमसी के पास भेजा गया थां। इस बीच मंदिर का निर्माण कार्य पूरा हो गया तथा मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा भी कर दी गई। मुंबई हाईकोर्ट ने बीएमसी को २३ फरवरी को न्यू मिल रोड पर अवैध निर्माणों को गिराने का आदेश दिया था।

- **दैनिक जागरण,** लखनऊ, १६ अक्टूबर, २००६

यह उचित होता कि उक्त जैन मंदिर का निर्माण कराने वाले बम्बई म्युनिसिपल कार्पोरेशन से निर्माण प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के पश्चात् ही निर्माण कार्य प्रारंभ करते और मंदिर में मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा करते। तब इस असहज और अविधिक स्थिति से बचा जा सकता था। कानून-कायदे सभी के लिये हैं और नैतिक मूल्यों पर बल देने वाले जैन धर्म के अनुयायियों से विशेष रूप से धार्मिक कृत्यों में उनका अनुपालन अपेक्षित है।

जागरण सिटी में प्रकाशित लेख

जैन धर्म मूलतः निवृत्तिमार्गी है। उसमें सामान्यतया क्रियाकाण्ड, मंत्र-तंत्र आदि के लिये स्थान नहीं है। उसकी यह छवि सुविख्यात है।

दैनिक जागरण, लखनऊ के जागरण सिटी में १६ अक्तूबर, २००६ ई., को महावीर निर्वाण दिवस के प्रसंग से डॉ. अनेकांत कुमार जैन का लेख 'महावीर और गौतम गणधर का दीप पर्व' प्रकाशित हुआ है। विद्वान लेखक ने अपने लेख में दीपावली पर्व से जुड़े कार्तिक अमावस्या को जैन तीर्थंकर महावीर के निर्वाण और उनके गणधर गौतम गणेश के केवलज्ञान प्राप्त करने के प्रसंग तथा अन्य विविध प्रसंगों आदि पर प्रकाश डालने के साथ-साथ जैन धर्मानुयायियों द्वारा किस प्रकार दीपावली मनायी जाती है और किस प्रकार जैन घरों व दुकानों पर दीपावली पूजन की जानी चाहिये उसकी विधि का वर्णन किया है।

वर्णित विधि ब्राह्मणीय परम्परा से प्रभावित प्रतीत होती है। उससे सर्वसामान्य में यह सन्देश जाता है कि रीति रिवाजों आदि की दृष्टि से जैन परम्परा समातन जैनेतर परम्परा से भिन्न नहीं है। जैन धर्म में भी क्रियाकाण्ड, मंत्र-तंत्र आदि का प्रचुर स्थान है, जबकि सिद्धांततः स्थिति यह नहीं है। लेखक प्रकाण्ड जैन विद्वान डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी' के सुपुत्र हैं तथा श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, में जैन दर्शन विभाग में अध्यापनरत हैं। उनकी लेखनी से सार्वजनिक पत्र में जैन धर्म की सामान्य छवि के प्रतिकूल लिखा जाना समीचीन प्रतीत नहीं होता।

समाचार विविधा

विद्वत् संगोष्ठियां

माह सितम्बर में सागर में अं. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् के तत्वावधान में **पं. बंशीधर व्याकरणाचार्य के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर राष्ट्रीय संगोष्ठी** सम्पन्न हुई जिसमें लगभग ३० विद्वान मनीषियों ने पंडित जी के सम्बन्ध में अपने आलेखों का वाचन किया। डॉ. रमेशचन्द्र जैन, बिजनौर, ने उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता की और श्रीमंत डालचंद जैन, सागर, एवं श्री शोभित जैन, प्रभारी कलेक्टर, सागर, मुख्य अतिथि रहे।

१५ से १७ सितम्बर, २००६ ई. को रांची में **'षट्काल परिवर्तन एवं काल परिवर्तन में निमित्त ज्योतिष्क विमान'** विषय पर एक अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी आयोजित हुई जिमसें देश के अनेक ख्याति प्राप्त विद्वानों ने अपने आलेखों का वाचन किया। संगोष्ठी के संयोजक पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी, थे।

१ से ३ अक्टूबर तक उदयपुर में **'भगवती आराधना अनुशीलन'** विषय पर अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी सम्पन्न हुई जिसमें ६३ विद्वानों ने शोधपत्र पढ़े। संगोष्ठी निदेशक प्रो. प्रेम सुमन जैन तथा संयोजक डॉ. जयकुमार जैन थे।

केरल में जैन धर्म पर सेमिनार

१४-१५ अक्टूबर को कलपेटा बैनाड़ (केरल) में **'केरल में जैन धर्म'** विषय पर सेमिनार हुआ जिसका उद्घाटन राज्यपाल श्री रघुनंदन लाल भाटिया ने किया। सेमिनार में श्री पी..डी. पद्मकुमार ने केरल के प्राचीन इतिहास पर तथा डॉ. हम्पा नागराजैया ने तमिलनाडु और केरल में प्राप्त जैन प्राचीन पुरातात्विक अवशेषों एवं शिलालेखों पर प्रकाश डाला। भारतीय सर्वेक्षण विभाग, केरल संभाग, के सुपरिन्टेन्डेन्ट डॉ. नाभिराजन ने केरल के प्राचीन जैन मन्दिरों आदि को स्लाइडों के द्वारा प्रदर्शित किया और बताया कि कलपेटा बैनाड़ के सुल्तान बैटरी स्थित दिगम्बर जैन मंदिर का जीर्णोद्धार करा दिया गया है तथा अन्य प्राचीन मंदिरों का जीर्णोद्धार भी कराया जा रहा है।

जैन दर्शन पर राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी

२४ से २६ अक्टूबर तक एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी सम्मेदशिखर जी में सम्पन्न हुई। विषय था **"जैन धर्म और दर्शन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में"**। सात

सत्रों में चली इस संगोष्ठी में २५ विद्वानों की सहभागिता रही। संगोष्ठी का संचालन-संयोजन डॉ. नीलम जैन (गुड़गांव) ने किया।

पारसनाथ स्टेशन पर ट्रेनों का ठहराव

रेल मंत्रालय ने १ अगस्त, २००६ ई., से सम्मेदशिखरजी जाने वाले यात्रियों की सुविधार्थ २३०१ हावड़ा-नई दिल्ली राजधानी एक्सप्रेस तथा २३०२ नई दिल्ली-हावड़ा राजधानी एक्सप्रेस पारसनाथ स्टेशन पर रुकने की व्यवस्था कर दी है।

वेजीटेरियन सिल्वर फॉइल्स

डी एस समूह ने कैच ब्रांड नाम से १०० फीसदी शुद्ध शाकाहारी चांदी के वर्क (वेजीटेरियन सिल्वर फॉइल्स) पेश किए हैं। इन सिल्वर फॉइल्स को धूल-धक्कड़ रहित माहौल में पूरी स्वच्छता के साथ एक खास पेपर के बीच रखकर हैमर मशीन के जरिए इलेक्ट्रानिक ढंग से पीटकर तैयार किया जाता है। भारत में इस तरह की फॉइल्स तैयार करने का यह अपनी तरह का पहला और सबसे बड़ा संयंत्र है जिसे अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से स्थापित किया गया है। इस तकनीक से सिल्वर फॉइल्स के अलावा गोल्ड फॉइल्स भी बनाई जाती है। गोल्ड फॉइल्स के निर्माण के लिए २४ कैरेट सोने का इस्तेमाल किया जाता है। सिल्वर फॉइल्स का वेजीटेरियन होना काफी मायने रखता है क्योंकि वर्क के रूप में इनका इस्तेमाल मिठाइयों के ऊपर लगाने के लिए किया जाता है। वर्कयुक्त ये मिठाइयां देश भर के हिंदू मदिरों में प्रसाद के रूप में ग्रहण की जाती हैं। इन्हें पान तथा अन्य खाद्य सामग्रियों में भी इस्तेमाल किया जाता है। परंपरागत रूप से चांदी का वर्क तैयार करने के लिए चांदी को मवेशियों की आंत के चमड़े के बीच में रखकर पीटा जाता है। इससे हिंदुओं और शाकाहारी लोगों की भावनाएं आहत होती हैं। इसीलिए डी एस ग्रुप ने शुद्ध शाकाहारी सिल्वर व गोल्ड फॉइल्स बनाने के लिए अत्याधुनिक संयंत्र लगाया है।

- (दैनिक जागरण, लखनऊ, से साभार)

जैन ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद हेतु शब्दावली

उच्चतर जैन ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद हेतु ५००० उपयोगी शब्दों की एक शब्दावली डॉ. नन्द लाल जैन, रीवां, द्वारा संकलित की गई है। पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, से प्रकाशित यह शब्दावली दिग. जैन महासभा कार्यालय, दिल्ली/लखनऊ से प्राप्त की जा सकती है।

अभिनन्दन

श्री हरिकिशोर प्रसाद सिंह, मानिकपुर (जनपद मुजफ्फरपुर), को उनके शोध-प्रबन्ध **'आचार्य पद्मकीर्ति विरचित पासणाह चरिउ का सांस्कृतिक अध्ययन'** पर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

श्रीमती उर्वशी को उनके शोध-प्रबंध **'स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा का समीक्षात्मक अध्ययन'** पर रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

सुश्री वीणा पाटील (सांगली) को उनके शोध-प्रबन्ध **'भावपाहुड : एक अध्ययन'** पर मैसूर विश्वविद्यालय ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

श्री मनीष श्रावक (म.प्र.) को उनके शोध-प्रबन्ध **'मालवा क्षेत्र के जैन शिल्प का समाजार्थिक एवं धार्मिक अध्ययन-प्रारंभ से १२ वीं शताब्दी तक'** पर बरकत उल्ला विश्वविद्यालय ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

१ अगस्त, २००६ ई. को कोलकाता में सुविख्यात शाकाहार प्रचारक तथा 'दिशाबोध' पत्रिका के सम्पादक **डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा** को **'अहिंसा रत्न'** की उपाधि से अलंकृत किया गया।

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, में अब तक कार्यवाहक कुलपति रहे **श्री एन. के. जैन** कुलपति नियुक्त किये गये।

पूर्व प्राचार्य **श्री कुन्दनलाल जैन, दिल्ली,** को श्री अ.भा. दिग. जैन विद्वत्परिषद् द्वारा **गणेश प्रसाद वर्णी पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

हिन्दी, संस्कृत एवं जैन साहित्य के विद्वान **डॉ. प्रेमचन्द रांवका, जयपुर,** को राजस्थान सरकार द्वारा संस्कृत दिवस (९ अगस्त) पर सम्मानित किया गया तथा २० अगस्त को उन्हें जयपुर में **'समाजरत्न २००६'** सम्मान से विभूषित किया गया।

डॉ. प्रेम सुमन जैन, उदयपुर, को पालि-प्राकृत के लिये **राष्ट्रपति अवार्ड** के लिये चयनित किया गया।

डॉ. यतीश जैन, जबलपुर, को जबलपुर विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में राष्ट्रपति द्वारा अर्थशास्त्र विषय में विश्वविद्यालय में प्राविण्य सूची में आने के फलस्वरूप तीन स्वर्ण पदकों से सम्मानित किया गया।

१७ सितम्बर को जैन मिलन लखनऊ द्वारा विश्व मैत्री दिवस पर डॉ. विमल कुमार जैन, जयपुर, को विश्व मैत्री सेवा सम्मान २००६ से सम्मानित किया गया।

४ अक्टूबर को उदयपुर में प्रो. फूलचन्द प्रेमी (वाराणसी), डॉ. प्रेम सुमन जैन (उदयपुर), डॉ. उदयचन्द जैन (उदयपुर), डॉ. कपूरचन्द जैन (खतौली) तथा

पं. लालचंद राकेश (गंजबासौदा) को **आचार्य ज्ञानसागर पुरस्कार से; डॉ. रमेशचन्द जैन (बिजनौर)** को **गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति पुरस्कार से; डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर)** को **पं. गोपालदास वरैया पुरस्कार** से; तथा **डॉ. कमलेश कुमार जैन (वाराणसी) एवं डॉ. कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन' (श्री महावीर जी) को धर्म प्रभावना के लिये** सम्मानित किया गया।

विख्यात प्रेस फोटो पत्रकार **पद्मश्री वीरेन्द्र प्रभाकर** को भिवानी में आचार्य **महाप्रज्ञ अहिंसा प्रशिक्षण सम्मान** से अलंकृत किया गया।

६ अक्तूबर को पीपाड़ शहर (जोधपुर) में साहित्यकार **डॉ. दिलीप धींग** को **आचार्य हस्ती स्मृति सम्मान २००६** से सम्मानित किया गया।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा के चुनाव में **श्री निर्मल कुमार सेठी** पुनः सर्वसम्मति से **राष्ट्रीय अध्यक्ष** चुने गये।

श्री कपूरचन्द जैन (धुवारा) मध्य प्रदेश विधान सभा के उपचुनाव में बड़ा मलहरा (छतरपुर) सीट से २ नबम्बर को विजयी घोषित हुए।

न्यायमूर्ति सत्येन्द्र कुमार जैन इलाहाबाद उच्च न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त हुए।

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद, गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार, २००६ से सम्मानित हुए।

डॉ. सागरमल जैन को उदयपुर में **देवेन्द्र श्रुत सेवा सम्मान २००६** से सम्मानित किया गया।

डॉ. एल.एम. सिंघवी को तृतीय उपाध्याय ज्ञानसागर श्रुत संवर्द्धन पुस्कार से सम्मानित किया गया।

प्रो. मधुकर अनन्त मेहन्दले को प्राकृत भाषा एवं साहित्य में उत्कृष्ट योगदान हेतु **११वा आचार्य हेमचन्द्र सूरि सम्मान २००५** से सम्मानित किया गया।

डॉ. अशोक कुमार जैन, दिल्ली, को **'पं. प्रकाश हितैषी पुरस्कार'** तथा **'विद्वत्रत्न'** विरुद से सम्मानित किया गया।

श्री शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल, जयपुर, को **इन्दिरा गांधी प्रियदर्शिनी पुरस्कार २००६ से** सम्मानित किया गया।

न्यायमूर्ति विजेन्द्र कुमार जैन पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश नियुक्त हुये।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये शोधादर्श परिवार अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

शोक संवेदन

माह जुलाई २००६ में ७२ वर्षीय सुप्रसिद्ध जैन संगीतकार एवं कलाकार **श्री सुभाष जैन पंकज, मथुरा,** का आकस्मिक निधन हो गया।

२६ जुलाई को सिरोंज (विदिशा, म.प्र.) में अखिल विश्व जैन मिशन के महासचिव और बहुमुखी प्रतिभा के धनी ७२ वर्षीय **श्री निर्मल कुमार जैन 'सेनानी'** का स्वर्गवास हो गया।

२८ जुलाई को सोलापुर में जैन समाज के वरिष्ठ विद्वान, अनेक मराठी पुस्तकों के प्रणेता, ७८ वर्षीय **डॉ. निर्मल कुमार फडकुले** नहीं रहे।

६ अगस्त को अनेक सुख्यात अभिनन्दन ग्रन्थों, स्मृति ग्रन्थों तथा विविध जैन साहित्य के प्रकाशन का कीर्तिमान स्थापित करने वाले और स्याद्वाद् महाविद्यालय वाराणसी के प्रबंधक, ८० वर्षीय **श्री बाबूलाल जैन 'फाल्गुल्ल'** का देहावसान हो गया।

२३ अगस्त को लखनऊ में ८२ वर्षीय समाजसेवी धर्मनिष्ठ श्रावक **श्री विशन चन्द्र जैन गोटेवालों** का निधन हो गया।

३० अगस्त को मुंबई में ६१ वर्षीय साहित्य कलारत्न राष्ट्रसंत **आचार्य श्री यशोदेवसूरि** दिवंगत हो गये।

२१ अक्टूबर को अतिशय क्षेत्र अणीन्दा पार्श्वनाथ (उदयपुर) में **आचार्य श्री भरतसागरजी महाराज** का शरीर शान्त हो गया।

२४ नवम्बर को आरा में धर्मनिष्ठ सुश्रावक समाजसेवी बहुमुखी प्रतिभा वाले ८५ वर्षीय **श्री सुबोध कुमार जैन** (जैन सिद्धान्त भवन) का स्वर्गवास हो गया।

शोधादर्श परिवार उपर्युक्त दिवंगत महानुभावों को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शान्ति और सद्गति के लिये जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है तथा शोक संतप्त उनके स्वजनों-परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

आभार

जस्टिस एम. एल. जैन (रिटायर्ड जज, दिल्ली उच्च न्यायालय), जयपुर, ने **शोधादर्श** को भेंट स्वरूप रु. २०००/- प्रदान किये।

श्रीमती सितारा देवी जैन, जबलपुर, ने **शोधादर्श** को भेंट स्वरूप रु. १०००/- प्रदान किये।

श्री चक्रेश जैन, इन्दौर, ने **शोधादर्श** को भेंट स्वरूप रु. २००/- प्रदान किये।

श्री अविनाश जैन गर्ग एवं श्रीमती रेखा गर्ग, लखनऊ, ने स्व. श्री अजित प्रसाद जैन की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को रु. १०१/- भेंट किये।

पाठकों के पत्र

शोधादर्श का ५९वां अंक परम्परानुकूल तथा ज्ञानवर्द्धक और चिन्तनीय सामग्री से भरपूर है। दिगम्बरत्व के औचित्यानौचित्य पर इधर काफी पढ़ने को मिला। गांधीजी के विचार तथा कतिपय जैन परम्परावादी विद्वानों के विचार अलग-अलग दोनों सही जान पड़ते हैं, किन्तु देश-काल-परिस्थिति में आए बदलाव से यदि परम्परा में भी आवश्यक संस्कार न किया गया तो वह परम्परा न रहकर रूढ़ि बन जाती है और मात्र लकीर पीटने की युक्ति चरितार्थ करती है। इस विषय में जैन दर्शन की आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के सन्दर्भ में प्रासंगिकता का गहन अध्ययन करने वाले डॉ. प्रद्युम्नकुमार जैन 'अनंग' के विचार मननीय और चिन्तनीय हैं कि "तपस्या के मूल्य को बदली परिस्थितियों में पुनः परिभाषित कर पुनर्मूल्यांकित करना चाहिए।" डॉ. शशिकान्त ने भूधरदासकृत बारह भावना का अंग्रेजी में Twelve Modes of Reflection के रूप में जो प्रस्तुतिकरण किया है वह 'भावना' को समझने में सार्थक है। किन्तु १०वीं भावना का 'चौदह राजु' स्पष्ट नहीं हो सका है। शायद इसीलिए डॉ. शशिकान्त ने उसे कैपिटल लेटर से Raju लिखकर छोड़ दिया है। कहीं यह शब्द -'चौदह भुवन' तो नहीं जिसमें सात ऊर्ध्वलोक और सात अधोलोक बताए गए हैं। स्वयं डॉ. शशिकान्त ने ब्रैकेट में संकेत भर किया है। डॉ. शशिकान्त ने ही 'खारवेल पुनश्च' के अन्तर्गत समन्वय वाणी (अक्टूबर २००५) में प्रकाशित सौ. शैल बंसल के लेख 'खारवेल को प्रकाश में लाने का श्रेय आचार्य श्री विद्यानंद जी को' की जानकारी दी है। उसमें मुनि खारवेल को दिगम्बर जैन बताना और पुरी की जगन्नाथ प्रतिमा को 'कलिंग जिन' की प्रतिमा मानना न तर्क संगत है और न साक्ष्य-सापेक्ष। उक्त लेख से केवल आचार्यश्री के प्रति लेखिका की अगाध भक्ति प्रकट होती है। यह भी संभव है कि लेखिका की खारवेल विषयक जानकारी केवल आचार्यश्री के प्रयासों तक ही सीमित हो क्योंकि आचार्यश्री ने तो १९६० ई. से खारवेल को जाना और उनका प्रचार-प्रसार जैन महोत्सवों के रूप में किया, किन्तु खारवेल का अध्ययन ऐतिहासिक विद्वान् एक शताब्दी से भी अधिक पहले से करते आ रहे हैं। हाँ खारवेल को दिगम्बर जैन मुनि बनाने का श्रेय वे आचार्यश्री को अवश्य दे सकती हैं।

- डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, भिलाई

शोधादर्श ५६ मिला। विचारोत्तेजक है। सभी लेख गहन अध्ययन की अपेक्षा रखते हैं। पृ. ३३ पर जो टिप्पणी, 'आदिपुराण में वर्णित वर्ण और जातियां' लेख पर डॉ. शशिकांत जी ने दी है उससे मैं कुछ अंशों में सहमत हूँ कि 'समसामयिक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवेश का संकलन करने के सूत्र उपलब्ध होते हैं यही उसका उपयोग है।' तपस्या के बारे में डॉ. प्रद्युम्नकुमार अनंग का लेख पढ़ा। डॉक्टर साहब का चिंतन तार्किकता से भरपूर है। उन्होंने 'तपसा निर्जरा च' के बारे में अत्यंत गहन ऊहापोह किया है। किन्तु अंतरंग तप और बहिरंग तप यह दोनों एक ही तंप के (जिससे निर्जरा होती है) दो रूप हैं न कि दो स्वतंत्र तप।

एज्युकेटेड कसाई (प्रशिक्षित कसाई) का वृत्त **वीतराग वाणी** में टिप्पणी सहित आया होगा। आपने जो टिप्पणी दी वह सयुक्तिक है, किंतु इसके लिए जनजागरण व जनांदोलन की आवश्यकता है। सामाजिक धार्मिक संस्थाओं को इस बारे में पहल करनी होगी।

श्री मनोज जैन 'मानव', सिकन्द्राबाद, का पत्र दिगम्बरत्व/नग्नत्व के संबंध में पढ़ा। विकार नग्नत्व में नहीं बल्कि देखने वालों की नज़र में होता है यह सत्य है। किंतु नग्नत्व या दिगम्बरत्व का नाटक कर उसका उपयोग सुनित्वोचित्त संयम में ही होना चाहिये। आत्मसाधना की आत्माराधना और मौन रूप में एकाकी परिणति होनी चाहिये, इसके विपरीत लोकेषणा, लोकानुरंजन या स्वार्थ पोषण तथा चमत्कार दर्शन आदि हेतु नग्नता को भुनाना यह अयोग्य है।

- श्री मनोहर मारवडकर, नागपुर

शोधादर्श जुलाई ०६ अंक सुन्दर पठनीय सामग्री से पूर्ण है। श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरि का परिचय कुशलता से कराया गया है। साहित्यिक पुरस्कार के संबंध में जो मत व्यक्त किया है 'अंधा बांटे रेवड़ी अपने अपनों को देय' सत्य है। हिन्दी पुरस्कारों में भी यही स्थिति चल रही है। इसमें सुधार की आवश्यकता है। विद्वान व बुद्धिमान जिनका कोई धनी धोरी नहीं यों ही पड़े हैं, कोई नहीं पूछता। खुशामद, परिचय का अभाव ही कारण है। Twelve Modes of Reflection संक्षिप्त होते हुए भी सारगर्भित है। 'संस्कृत पुराणों में बाहुबली कथा' अच्छा शोधपूर्ण लेख है। 'खारवेल पुनश्च' नवीन बात सामने रखता है। 'कब्ज का उपचार' अमल करने योग्य सामग्री देता है। अंक की अन्य सामग्री भी आकर्षित करती है। साहित्य-सत्कार कई नवीन पुस्तकें देखने की ललक जगाता है। समाचार विमर्श व समाचार विविधा ज्ञानवर्धक हैं।

- श्री मदनमोहन वर्मा, ग्वालियर

शोधादर्श ५६ के सभी आलेखों ने मुझे बहुत प्रभावित किया। दिगम्बरत्व का महत्व, वागदेवी के अवतरण का पर्व - श्रुत पंचमी, संस्कृत पुराणों में बाहुबली कथा, समाज का भविष्य और भविष्य का समाज, खारवेल पुनश्च, विशेष रूप से तथ्यपूर्ण सामग्री संजोये हुए, ज्ञानवर्धक, चिन्तन के प्रेरक लेख हैं।

- डॉ. श्रीमती उषा जैन, बिजनौर

शोधादर्श ५६ प्राप्त हुआ। 'समाज का भविष्य..' में व्यक्त की गयी श्री अंशु जैन की चिन्ता वास्तविक है। उनके जागरूक एवं बुद्धिजीवी होने का प्रमाण है। तपस्या पर डॉ. प्रद्युम्न कुमार का विवेचन ज्ञानवर्धक है। परन्तु तपस्या का कोई पुराना या नया तरीका नहीं होता। वैज्ञानिक तकनीक के नाम पर कर्म-ग्रंथियों को निर्जरित करने का विचार भ्रामक लगता है। आत्म तत्व व कर्म बन्ध की विवेचना ही आसान नहीं है। डॉ. शशिकांत जी ने 'चिन्तन-कण' के अंतर्गत दिगम्बरत्व पर पुनः चर्चा की है। दिगम्बरत्व को शिथिलाचार का कारण माना जा रहा है। वस्तुतः ऐसा नहीं है।

- श्री आदित्य जैन, कानपुर

शोधादर्श ५६ मिला। एक दिन में लगभग पूरा पढ़ गया। खाली बैठा था, पढ़ लिया। अब हाथ में लैंस रखकर पढ़ने में सुविधा होती है। खलबली मचनी ही चाहिए, उसके बिना जागृति नहीं आती। आपने नम्र शब्दों में समाधान व्यक्त किया, सो ठीक है। इस अंक में सभी लेख विचारणीय, पठनीय हैं। 'तपस्या पर आधुनिक उहापोह' तप धर्म पर नयी दृष्टि से, विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में सोचने और नई दिशा ग्रहण करने को प्रेरित करेगा, करना चाहिए। अल्पसंख्यक का प्रश्न भी खासा विवादास्पद है। हमें न तो अल्प रहना चाहिए न बहु, हमें पूर्ण रहना चाहिए।

- श्री जमनालाल जैन, सारनाथ

मार्च २००६ का **शोधादर्श** पढ़ा। सन्त वर्णी जी पर आपने जो लेख लिखा, उसने मन की भावनाओं को छू लिया। बीसवीं सदी के वे अप्रतिम सन्त थे। वे मुनि जीवन की दुर्धर्षिता और गंभीरता को जानते थे।

शोधादर्श ५६ मिला। एक बार में ही प्रायः सारी सामग्री पढ़ गया। दिगम्बर मुनि के लौकिक होने की आचार्य कुन्दकुन्द ने आलोचना की है। व्यक्तिगत शिथिलाचार के कारण दिगम्बरत्व के आदर्श का अपलाप नहीं किया जा सकता। साधु शिथिलाचारी न हो, इसके लिए समाज जागरूक हो, आगम का अभ्यासी हो।

- डॉ. रमेशचंद्र जैन, बिजनौर

शोधादर्श-५६ का प्रारंभिक लेख 'विजय राजेन्द्र सूरि' अच्छा लगा। उनकी तपश्चर्या साधना तथा रचना धर्मिता को शत-शत प्रणाम। 'दिगम्बरत्व का महत्व' अपनी जगह सही है। भूधरदास जी के दोहे बड़े सुन्दर हैं। उनमें भाव और शिल्प दोनों हैं। डॉ. शशिकांत ने अंग्रेजी में उनका अनुवाद प्रस्तुत करके अच्छा कार्य किया है। 'आदिपुराण में वर्णित वर्ण और जातियां' शीर्षक लेख अपनी जगह ठीक है, उस पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं थी। इस बार अनेक दिवंगत विभूतियों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की गयी है। श्रीमती सुधा जिन्दल तथा आदरणीय ज्ञानचन्द जैन से मेरा परिचय रहा है, उन्हें मेरा शत शत नमन।

- डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ

शोधादर्श का अंक ५६ मिला। पूर्ववत विशिष्ट विचारोत्तेजक सामग्री से भरपूर है। सम्पादकीय 'साहित्यिक पुरस्कार' संक्षिप्त सार गर्भित है। गुरुगुण-कीर्तन में श्वेताम्बराचार्य को स्थान मिला, आभार। 'दिगम्बरत्व', 'तपस्या पर आधुनिक उहापोह' तथा 'दिगम्बरत्व सैद्धान्तिक चरम अथवा प्रदर्शनीय वेश' आलेख चिंतन के नये आयाम खोलते हैं। भाई अंशु जैन 'अमर' का आलेख 'समाज का भविष्य और भविष्य का समाज', दिशाबोधक नग्न सच्चाई से साक्षात्कार कराता है। नेतृत्व विहीन बिखरा समाज उनकी पीड़ा समझे तो अभी भी घर की रक्षा-सुरक्षा की जा सकती है। डॉ. शशि कान्त जी के 'स्मृतिशेष सुधा जिन्दल' और 'पत्रकार शिरोमणि ज्ञानचंद जैन' आलेखात्मक परिचय प्रेरणाप्रद हैं। अन्य स्थायी स्तंभ सारगर्भित हैं और श्रम साधना को अभिव्यक्त करते है। वर्ष २००५-०६ का प्रतिवेदन (तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति) पारदर्शिता पूर्ण है।

- डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

शोधादर्श ५६ चिंतन कर पढ़ने के पश्चात् मुझे आपकी श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरि गुरुगुण-कीर्तन से बहुत सी नई जानकारी मिली। भारतीय परम्परा एवं हमारी जैन संस्कृति की मूलभूत अच्छाई सामने लाना इन लेखों की खूबी है। आपका साहित्यिक पुरस्कार सम्बन्धी सम्पादकीय एक सत्य एवं सटीक बात है जो हमारे साथ घट चुकी है। 'दिगम्बरत्व का महत्व', 'वाग्देवी के अवतरण का पर्व श्रुत पंचमी' भी ज्ञानवर्धक हैं। 'तपस्या पर आधुनिक ऊहापोह' डॉ. प्रद्युम्नकुमार अनंग का काफी महत्वपूर्ण लेख है।

- डॉ. कांति जैन, ग्वालियर

आपके द्वारा भेजी गई **शोधादर्श** पत्रिका बहुत ही रुचिकर एवं जैन दर्शन के प्रति पूर्ण तथ्यात्मक एवं शोधपूर्ण विषयों से समाज को काफी अवगत कराती है। जैन धर्म के प्रति उसमें आपके विचार प्रभावित एवं आकर्षित करते हैं।

- श्री सुशील कुमार सेठी, उज्जैन

दिगम्बरत्व के सम्बन्ध में मेरे लेख पर मिली जुली प्रतिक्रियायें रही हैं। जहां एक ओर कुछ ने उसे सराहा है तो कुछ ने भद्दी गाली-गलौज भरे पत्र भी भेजे हैं। लेकिन ऐसे पत्रों की अब आदत सी हो गई है। एक-दो बार पहले लेखों पर तो मुझे धमकियां तक मिल चुकी हैं। आप जैसे प्रबुद्ध एवं विचारकों ने मेरे लेखों को सराहा है, इससे मुझे बल मिलता है।

जुलाई २००६ में प्रकाशित आपका आलेख 'दिगम्बरत्व सैद्धान्तिक चरम अथवा प्रदर्शनीय वेश' मेरे विचारों का स्पष्टीकरण करता है। इसमें आपने गांधीजी का स्पष्टीकरण भी दे दिया है, इसकी मुझे भी तलाश थी।

इसी अंक में डॉ. धर्मचंद जैन का लेख 'धन और धर्म' भी महत्वपूर्ण है। आज धर्म के ऊपर धन हावी होता नज़र आता है जबकि वास्तविकता यह है कि धर्म के लिए धन की आवश्यकता ही नहीं होती।

- डॉ. अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद

ले उन्सठवाँ अंक है, आया शोधादर्श।
उपजा जिसको प्राप्त कर, उर-अन्तर में हर्ष।।
सार तत्व संयुक्त हैं, दोहे अति मतिमान।
कहते हैं 'श्री सारस्वत' 'जय जय जिन भगवान'।।
लिख 'जीवन की राह' को, कविता मध्य 'प्रशान्त'।
दिया गीत आध्यात्मिक, रुचिकर आद्योपान्त।।
सामाजिक परिदृश्य के, भर कर मनहर रंग,
रमाकान्त जी ने किया, क्षणिकाओं में व्यंग।।
लेख समीक्षा आदि से, अंक ज्ञान भण्डार।
सम्पादक श्रीमन् करें, साधुवाद स्वीकार।।

- श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध', लखनऊ

पाया हमने डाक से
'उनसठ' शोधादर्श
पढा आदि से अन्त तक
मन में छाया हर्ष।
श्री रमाकान्त 'राजेन्द्र
सूरि' का वन्दन करते हैं,
हम भी उनका पुनः आज
अभिनंदन करते हैं।
डाक्टर ज्योति प्रसाद
दिगम्बरत्व का महत्व बताते हैं
मन के भावों से इसकी
अद्भुत तुलना दर्शाते हैं।
श्रुत पंचमी का महत्व
विस्तार सहित समझाया है,
श्री अजित प्रसाद जैन ने
अपना दृष्टिकोण बतलाया है।
भूधर के बारह भावों को
अंगरेजी में ढाला है,
शशिकान्त ने इन भावों को
सार्वजनिक कर डाला है।
केवल ज्ञान मिला था
जिनवर महावीर को
किस स्थल पर,
सागर मल ने लेख लिखा
है इसी बिन्दुपर।
अंशु जैन का लेख
विचारों को प्रेरित करता है,
हो समाज का क्या भविष्य
इंगित करता है।

'धर्म' और 'धन' कौन श्रेष्ठ है
इस जीवन में,
डाक्टर धर्मचंद ने इसकी व्याख्या
की मानव चेतन में।
विविध पुराणों में संस्कृत के
बाहुबली की कथा बताते,
डाक्टर रमेश जी विविध
कोण से हैं समझाते।
महावीर ने जीने की
जो राह हमें बतलायी है
श्री 'प्रशान्त' ने कविता में
वह बात हमें समझायी है।
स्मृति केन्द्र समिति का
वार्षिक प्रतिवेदन सुखकारी है
श्री रमाकान्त जी इस श्रेयस के
सजीव अधिकारी हैं।
हाथी गुम्फा का शिलालेख
कैसे प्रकाश में आया है
'खारवेल' में शशि कान्त ने
इस पर ज्ञान बढ़ाया है।
कोष्ठबद्धता दूर रहे कैसे
रहस्य समझाते हैं
श्री धर्मानन्द विवेक पूर्ण
उसके उपाय दर्शाते हैं।
शोधादर्श कलापों ने यद्यपि
हमको हर्षाया है
पर कुछ दुखदायी दृश्यों ने
आकर के हमें रुलाया है।
श्रीमती 'सुधा जिन्दल' असमय

ही छोड़ हमें स्वर्गस्थ हुई,
दिल नहीं मानता है अब भी
है उनकी आभा अस्त हुई।
पत्रकारिता में अग्रिम
पाया था जग में उच्च शिखर,
श्री ज्ञानचंद भी चले गये
जो थे हमको अति ही प्रियवर।
ये दुखदायी घटनायें हैं
इनसे स्मृतियां व्याकुल हैं,
हृदय विदीर्ण हुआ इनसे
हर भाव हुआ विरहाकुल है।
श्री शशि कान्त ने घटना के
परिपूर्ण दृश्य दिखलाये हैं,
सब ही आभारी हैं उनके
अश्रु आँख में छाये हैं।

- डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त', लखनऊ

शोधादर्श ५६ मिला। इतनी सुन्दर समीक्षा के लिये आभारी हूँ। पुरस्कारों के सन्दर्भ में भाई रमा कान्त जी ने जो लिखा है वह सर्वथा सत्य और समयानुकूल है। चिन्तन की परम आवश्यकता है। **- डॉ. कपूर चन्द जैन, खतौली**

(पृष्ठ २८ का शेषांश)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दूसरी शताब्दी में आचार्य समन्तभद्र से प्रारम्भ हुई जैन स्तोत्र लेखन की परम्परा १६वीं-२०वीं शताब्दी में भी अक्षुण्ण चली आती रही। वर्तमान काल में आचार्य विद्यानंद, आचार्य विद्यासागर, पूज्य क्षमासागर, श्री प्रमाणसागर, उपाध्याय ज्ञानसागर आदि मुनिवरों ने संस्कृत एवं हिन्दी में स्तोत्रों की रचना की है। गणिनी आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी का भी स्तोत्र साहित्य में अवदान उल्लेखनीय है। माताजी द्वारा विरचित स्तोत्रों में **'सुप्रभात स्तोत्र'**, **'बाहुबलि स्तोत्र'** एवं **'कल्याण कल्पतरुस्तोत्र'** उल्लेखनीय हैं।

जैन स्तोत्र साहित्य की वाग्गंगा में गहरे बैठकर इस निष्कर्ष पर पहुँचना अवश्यंभावी है कि जैन साधु एवं साध्वियों ने अपनी तपःपूत लेखनी से अनेक उत्तमोत्तम स्तोत्र भारतीय साहित्य को प्रदान किए हैं। जैनों के स्तोत्र साहित्य की विपुलता, भव्यता, भावप्रवणता और माधुर्य की अनेक पौर्वात्य एवं पाश्चात्य जैनेतर मनीषियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यद्यपि अधिकांश स्तोत्रों का हिन्दी अनुवाद सुलभ है किन्तु अधुना आवश्यकता इस बात की है कि सभी संस्कृत स्तोत्रों का सरल हिन्दी में अनुवाद किया जाय जिससे जनसाधारण भी इस भागीरथी में गहरे पैठ सके, क्योंकि 'जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ''।

- १४६, कटरा, मैनपुरी

शोधादर्श में प्रकाशित २१ शोध-प्रबन्ध सार-संक्षेप

शोध-प्रबन्ध	शोधकर्ता	अंक	पृष्ठ
१. प्राकृत मुक्तक काव्य 'वज्जालग्गं' एक अध्ययन	डॉ. (श्रीमती) अलका अग्रवाल	८	२-३ व २७
२. संस्कृत के जैन सन्देश काव्य	डॉ. (कु.) कल्पना देवी	१०	५३-५६
३. जैन दर्शन में कर्म सिद्धान्त	डॉ. (ब्र.) मनोरमा जैन	१२	५७-५८
४. राज्य संग्रहालय, लखनऊ की जैन प्रतिमायें (एक प्रतिमाशास्त्रीय अध्ययन)	डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी	१३	४०-४३
५. भट्टाकलंककृत लघीयस्त्रय - एक दार्शनिक अध्ययन	डॉ. हेमन्त कुमार जैन	१३	१२-१८
६. हरिभद्रसूरिकालीन भारत	डॉ. रामसजीवन शुक्ल	१४	१४-१७ व २०
७. बालचन्द्र सूरिकृत बसन्तविलास महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन	डॉ. केशवप्रसाद गुप्त	१६-१७	६६-७६
८. प्रमुख जैनाचार्यों की योगदर्शन को देन	डॉ. (कु.) अरुणा आनन्द	१८	७३-७७
९. संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के जैन-मनीषियों का योगदान	डॉ.नरेन्द्र सिंह राजपूत	१९	५३-५५
१०. मेरुतुङ्गाचार्य कृत प्रबन्ध चिन्तामणि का एक आलोचनात्मक अध्ययन	डॉ. यदुनाथ प्रसाद दुबे	१९	५६-६४
११. नल विलास : एक आलोचनात्मक अध्ययन	डॉ. कृष्णपाल त्रिपाठी	२१	७०-७६
१२. जैन कर्म सिद्धान्त और मनोविज्ञान	डॉ. रत्न लाल जैन	२१	६२-६६
१३. जैन एवं बौद्ध शिक्षा दर्शन - एक तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. विजय कुमार जैन	२१	५९-६२
१४. आचार्य हेमचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. (श्रीमती) अनीता श्रीवास्तव	२५	३९-४५ व ४९
१५. पंचास्तिकाय का समीक्षात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. (श्रीमती) जैनमती जैन	२९	१६७-७० व १७२
१६. जैन योग और बौद्ध योग का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. (श्रीमती) सुधा जैन	३२	१२२-२६
१७. जीवन्धर चम्पू : एक समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. (श्रीमती) राका जैन	३६	२७८-८२
१८. प्राचीन मराठी जैन आख्यान-काव्य	डॉ. (श्रीमती) हेमलता बोलरापुरकर	३६	२८३-८८
१९. पं. राजमल्ल कृत पंचाध्यायी में प्रतिपादित जैन दर्शन	डॉ. (श्रीमती) मनोरमा जैन	४७	५८-६४
२०. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर जैन दर्शन का प्रभाव	डॉ. [illegible]	४५	[illegible]
२१. वेदव्यास एवं जिनसेन कृत हरिवंशपुराणों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. नीलम जैन	५४	३०-३२

लेखादि अनुक्रमणिका शोधादर्श ५५-६०

शोधादर्श ४२ में अंक १-४२ में प्रकाशित सामग्री की, शोधादर्श ४८ में अंक ४३-४८ में प्रकाशित सामग्री की तथा शोधादर्श ५४ में अंक ४९-५४ में प्रकाशित सामग्री की अनुक्रमणिका दी गई थी। उसी क्रम में यहाँ उसके आगे शोधादर्श ५५-६० में प्रकाशित सामग्री की अनुक्रमणिका दी जा रही है। - नलिन कान्त जैन

खण्ड- क : लेखक वृन्द

नाम लेखक	लेखन शीर्षक	अंक	पृष्ठ
१. श्री अजित प्रसाद जैन	(अ) सम्पादकीय :	५५	८-१०
	समाधिमरण	५६	१०-११
	चमत्कार की जय जयकार		
	(आ) अन्य लेख :		
	श्राद्ध पर्व-दीपावली	५७	७६
	समाज सुधार में धर्म गुरुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका		७८
	कुत्ते भौंकते रहे, कारवां चलता रहा		८०
	मेरी अंतिम अभिलाषा		८२
	अपनी परम्पराओं को न भूलें	५८	१६-१८
	वाग्देवी के अवतरण का पर्व श्रुत पंचमी	५९	१०-१३
	निर्वाण महोत्सव एवं श्रद्धांजलि पर्व- दीपावली	६०	
	(इ) समाचार विमर्श :		
	रईसों का एक जैन साप्ताहिक पत्र	५५	५५
	(ई) तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति,		
	उ. प्र. प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००४-२००५ .	५६	४६-५०
२. श्री अखिल बंसल	श्रद्धा-सुमन	५७	६८
३. डॉ. अनंग प्रद्युम्न कुमार	दिगम्बरत्व की मर्यादा	५६	२१-२२
	श्रद्धा-सुमन	५७	६२
	तपस्या पर आधुनिक ऊहापोह	५९	४२-४५

४. डॉ. अनिल कुमार जैन	वर्तमान परिस्थितियों में साधु का नग्न रहना उचित या अनुचित	५८	३३-३५
५. श्रीमती अनुभूति	महिलाओं का धार्मिक विश्वास	५६	२६-३०
६. डॉ. अभय प्रकाश जैन	अजित आये और अजित होकर चले गये	५७	३०-३२
	श्रद्धा-सुमन		६८-६६
७. श्री आदित्य जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	६६
८. श्रीमती आशा जैन	स्वास्थ्य चर्चा	५६	५४
६. श्री आसूलाल संचेती	चिन्तन कण : परमेष्ठी नवकार मंत्र	५६	३५-३८
१०. श्रीमती इन्दु कान्त जैन	कहाँ छिपे हो प्यारे बाबा	५७	६०
११. सन्त ॐ पारदर्शी	मुक्तक	५५	४८
	पारदर्शी कुण्डली	५६	४१
	हृदय को गहरा आघात	५७	५२
	पारदर्शी-काव्यांजलि		६६
१२.डॉ. ऋषभचन्द्र जैन फौजदार	श्रद्धा-सुमन	५७	६६
	आदिपुराण में वर्णित वर्ण और जातियां	५६	२६-३३
१३.डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव	श्रद्धा-सुमन	५७	६६
१४. जस्टिस एम. एल. जैन	उपालम्भ देवानंदा का	५६	३६-४१
	श्रद्धांजलि	५७	५६
१५.श्री अंशु जैन 'अमर'	सेतु : स्व. श्री अजित प्रसाद जैन	५७	४१-४५
	गोम्मट मस्तकाभिषेक	५८	३६-५०
	समाज का भविष्य और भविष्य का समाज	५६	३५-३६
	अबला और जैन लॉ	६०	३८-४१
	शहीद अण्णा पत्रावले		५२-५४
१६.श्री कन्हैयालाल जैन	उनका वियोग त्रासदी है	५७	४७-४८
१७.श्री कल्याण कुमार 'शशि'	बाहुबलि स्तवन	५८	५६
१८.डॉ. कुन्दन लाल जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	६६-७०
१६. श्री कुलभूषण कुमार जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	६०
२०.पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री	गोम्मटेश्वर की स्थापना कथा	५८	३६-३८
२१. श्री कैलाशचंद जैन	अंध श्रद्धा के घातक कदम	५५	५५
	एक विशाल वृक्ष का धराशायी होना	५६	४०-४१

२२. डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी	श्रद्धा-सुमन	५७	७०
२३. श्री कैलाश मड़वैया	श्रद्धा-सुमन	५७	७०
२४. डॉ. गणेशदत्त सारस्वत	व्यक्तित्व के प्रतिष्ठापक	५७	१७-१८
	जय-जय जिन भगवान	५९	९६
	जीवन अल्प विराम	६०	५९
२५. श्री गया प्रसाद तिवारी 'मानस'	श्री अजित प्रसाद जैन - एक महामानव	५७	२०-२१
२६. डॉ. गोकुल चन्द जैन एवं डॉ. सुनीता जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	७०
२७. डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा	शाकाहार-एक जीवन्त आहार	५६	३१-३४
	श्रद्धा-सुमन	५७	७०
२८. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	बड़नगर और उसका पुरातत्व	५५	६-७
	एक विचित्र जैन प्रस्तरांकन	५६	८-९
	अग्रज का पत्र अनुज के नाम	५७	८-९
	Lord Gommatesvara of Sravnabelgola : -Place and Date	५८	११-१५
	दिगम्बरत्व का महत्व	५९	७-९
	जाति और धर्म	६०	१०-१३
२९. श्री जगाती नर्मदा प्रसाद जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	७०
३०. श्री जमनालाल जैन	नग्नत्व और मूल गुण - एक चिन्तन	५६	२३-२५
	श्रद्धा-सुमन	५७	७०
३१. श्री जयराम दास रस्तोगी	पहले आप	५६	४४
३२. डॉ. जिनेन्द्र कुमार जैन	जैन पुराणों में आर्थिक इतिहास	६०	२९-३३
३३. श्री डालचंद जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	७०-७१
३४. श्री ताराचंद्र प्रेमी	श्रद्धा-सुमन	५७	७१
३५. श्री ताराचंद्र जैन बख्शी	श्रद्धा-सुमन	५७	७१
३६. श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	श्रद्धा-सुमन	५७	७१
	प्राणि मात्र से प्रेम हो	५८	६१

	स्वास्थ्य ह्रास मत कीजिए	५९	५१
	महावीर-गुणगान	६०	५६
३७. डॉ. धर्मचन्द जैन	धन और धर्म	५९	२१-२३
३८. स्वामी धर्मानन्द	स्वास्थ्य चर्चा - कोष्ठबद्धता (कब्ज़) का उपचार	५९	४९-५१
३९. डॉ. नन्दलाल जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	७१
४०. श्री नरेश चंद्र जैन	सामाजिक कार्यों में मेरे प्रेरक पंचकल्याणक	५७	४८
	कार्यक्रमों में बोलियों का औचित्य	६०	५४
४१. श्री नलिन कान्त जैन	अन्तिम यात्रा	५७	५३-५४
	लेखादि अनुक्रमणिका शोधादर्श ५५-६०	६०	८२-९१
४२. डॉ. नलिनी जोशी	श्रीमद्भगवद्गीता के 'विश्वरूप दर्शन' पर जैन दार्शनिक दृष्टि	६०३४-३७व	५८
४३. पं. नाथूलाल जैन शास्त्री	एक अपूरणीय क्षति	५७	१९
४४. श्रीमती निधि जैन	वात्सल्यमूर्ति आदरणीय छोटे बाबाजी	५७	६३
४५. श्री नेमीचन्द्राचार्य	गोम्मटेस थुदि	५८	५७-५८
४६. पं. पद्मचन्द्र शास्त्री	श्रद्धा-सुमन	५७	७१
४७. डॉ. परमानन्द जड़िया	परिवेश	५६	४४
	श्रद्धा-सुमन	५७	७१
	नव वर्ष की बधाई	५८	६१
४८. कु. पलक जैन	हमारे प्यारे 'टॉफी बाबा' जी	५७	५९
४९. डॉ. पूर्णचन्द्र जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	७१
५०. श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास'	श्री अजित प्रसाद जी जैन	५७	२३-२४
५१. पं. प्रेमचन्द्र जैन 'दिवाकर'	श्रद्धा-सुमन	५७	७१-७२
५२. श्री बी. डी. अग्रवाल	श्री अजित प्रसाद जैन - एक संस्मरण	५७	२२
५३. श्री ब्रह्मराज मित्तल	श्रद्धा-सुमन	५७	७२
५४. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'	श्रद्धा-सुमन	५७	७२
	गोम्मटेश्वर बाहुबली और गोम्मटेस थुदि : एक अनुशीलन	५८	५३-५६
५५. श्री मधुरिम जैन	याद ही रह गई बस	५७	६२

५६. श्री मनोहर मारवडकर	मैं कहता हूँ आतम देखी	५६	४३
	दिगम्बरत्व की मर्यादायें : एक चिन्तन	५८	३१
	स्वयं पंचपरमेष्ठी		६०
	धर्म के दशलक्षणों में प्रथम शौच या सत्य	६०	४२-४३
५७. श्री महावीर प्रसाद जैन 'सर्राफ'	अभिन्न मित्र अजित प्रसाद जी	५७	५५-५६
५८. डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'	मुक्तक	५५	५१
	अजित प्रसाद जैन ने जग में कीर्ति ध्वजा फहराई	५७	६५
	ऐसा कहीं बसन्त नहीं	५८	६२
	जीवन की राह	५६	५२
	बिन्दु चला है सिन्धु से मिलने	६०	५८
५९. महात्मा गांधी	दिगम्बरत्व की मर्यादा	५५	५२
६०. महात्मा भगवानदीन	धर्म को सत्य पर कसिये	५५	५१
६१. डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया	नहीं चाहते अगर भटकना (गीत)	५५	५६
	श्री अजित प्रसाद जैन अष्टक	५७	६४
	भावों से सुख धन मिलता है	६०	५७
६२. डॉ. मालती जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	७२
	संस्कृत में जैन स्तोत्र साहित्य	६०२३-२८व ८०	
६३. श्री मिलापचंद डंडिया	श्रद्धा-सुमन	५७	७३
६४. डॉ. मीना अग्रवाल	जैन साहित्य में संगीत	५८	२१-२५
६५. श्रीमती मीनाक्षी जैन	जैन धर्म की प्राचीनता के वैदिक प्रमाण	५५	३६-४१
६६. श्री मुकुल मोतीलाल 'विजय'	श्रद्धा-सुमन	५७	७३
६७. श्री मोतीलाल जैन 'विजय'	मेरे अनन्य श्रद्धापात्र श्री अजित प्रसाद जी	५७	५८-५९
६८. डॉ. रजनीश शुक्ल	प्राकृत काव्यों में मुक्तक का स्थान	५५	४२-४६

	पालि-प्राकृत मुक्तक काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन	५८	२६-३०
६९. श्री रमेशचंद्र जैन	श्रद्धा-सुमन	५५	७३
७०. डॉ. रमेशचंद्र जैन	संस्कृत पुराणों में बाहुबली कथा	५६	२४-२८
७१. डॉ. राजाराम जैन	एक निष्पक्ष निर्भीक पत्रकार का दुखद निधन	५७	३३-३५
७२. डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	मन का करुँ अभिषेक बनूँ पावन	५६	४२
	अपराजेय व्यक्तित्व : श्री अजित प्रसाद जी जैन	५७	३६-४०
	वासोकुण्ड-वैशाली के जनमानस में महावीर	६०	४८-५१
७३. श्री रोहित कुमार जैन	ऐसे थे हमारे बाबू अजित प्रसाद	५६	४१
७४. श्री ललित कुमार नाहटा	श्रद्धा-सुमन	५७	७३
७५. श्री लालचन्द्र जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	७३-७४
७६. सुश्री लीना विनायकिया	दिगम्बरत्व की मर्यादा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में	५८	३२-३३
७७. प्रा. सौ. लीलावती जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	७४
७८. श्री लूणकरण नाहर जैन	मेरे प्यारे महावीर	५५	४४
	श्रद्धांजलि	५७	४६
७९. डॉ. विमला जैन 'विमल'	जैन कला में नाग आकृतियां	५५	२९-३३
	श्रद्धांजलि	५७	६७
८०.श्रीमती विमला मोतीलाल जैन 'विजय'	श्रद्धा-सुमन	५७	७४
८१. श्री वीरेन्द्र सिंह लोढ़ा	श्रद्धा-सुमन	५७	७४
८२. श्री वेद प्रकाश गर्ग	श्रद्धा-सुमन	५७	७४
८३. डॉ. शशि कान्त	जैन संस्कृति में कौशाम्बी	५५	११-१३
	खारवेल	५६	१२-२०
	स्मृति के झरोखे से	५७	१०-१२
	लौकिक और पारलौकिक ज्ञान	५८	१६-२०
	Twelve Modes of Reflecton	५६	१४-१६
	खारवेल-पुनश्च		४६-४८
	चिन्तन-कण : दिगबरत्व- सैद्धान्तिक चरम अथवा प्रदर्शनीय वेश		५३-५४

	स्मृतिशेष सुधा जिन्दल		५६-७१
	पत्रकार-शिरोमणि ज्ञानचंद जैन		७२-७३
	विघटन श्रेयस्कर नहीं	६०	१७-२१
८४. श्री शान्तिलाल जैन बैनाड़ा	श्रद्धा-सुमन	५७	७४
८५. श्री शिवचरन लाल जैन	पुरानी पीढ़ी के ज्योतिपुंज		
	श्री अजित प्रसाद जैन	५७	२६
८६. श्री शिव विश्वकर्मा 'प्रशान्त'	गोम्मटेस थुदि का हिन्दी पद्यानुवाद	५८	५६
८७. श्रीमती शैल बंसल	विनयांजलि	५७	६७
८८. डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी	जिनभक्त ओखरिका द्वारा स्थापित वर्धमान प्रतिमा	५६	२६-२७
	पूज्य चाचाजी	५७	१८
८९.साहू शैलेन्द्र कुमार जैन	ऐसे भी होते हैं इन्सान	५५	५४
	इस्लाम और पशुवध	५६	६
	श्रद्धा-सुमन	५७	७४
	स्वास्थ्य-चर्चा : हृदयरोग का उपचार	५८	६३
९०. श्री सनत जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	७४-७५
९१. पं. सरमनलाल जैन दिवाकर	श्रद्धा-सुमन	५७	७५
९२. डॉ. सागरमल जैन	भगवान महावीर का जन्म स्थल :		
	एक पुनर्विचार	५५	१५-२३
	भ. महावीर का केवलज्ञान		
	स्थल : एक पुनर्विचार	५६	१७-२०
९३. श्रीमती सितारा जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	७५
९४. श्री सुखमाल चन्द जैन	वात्सल्य भाव के धनी		
	भाई अजित प्रसाद	५७	१६
९५. श्रीमती सुधा जिन्दल	कैलाश भूषण जिंदल		
	एक समर्पित व्यक्तित्व	५५	४६-५०
९६. पं. सुनील जैन 'संचय' शास्त्री	अनेकान्तवाद और पर्यावरण	५५	३४-३५
	श्रद्धा-सुमन	५७	७५
९७. मुनिश्री सुनील सागर	संतिणाहत्थुदी	६०	५५-५६

९८. श्री सुबोध कुमार जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	७५
९९. श्री सुभाष जैन	श्रद्धा-सुमन	५७	७५
१००. श्री सुरेश चन्द जैन	आदरणीय मामा जी	५७	९
१०१. श्री सुरेशचन्द जैन बारौलिया	जैन संस्कृति की प्राचीन धरोहर-कंकाली टीका	५६	२८-३०
१०२. श्री सुरेश जैन 'सरल'	मैं : एक सावधान मनीषी (आत्म व्यंग्य)	५५	५७
	श्रद्धा-सुमन	५७	७५
१०३. श्री संजीव 'ललित'	आदर्श सम्पादक : श्री अजित प्रसाद	५७	२५-२८
१०४. श्री संदीप कान्त जैन	समाज को जगाने वाला अब नहीं रहा	५७	६१-६२
१०५. ब्र. संदीप 'सरल'	अपराजेय लेखनी के धनी-श्री अजित प्रसाद जैन	५७	५७
१०६. डॉ. हुकमचंद जैन	रयणचूडरायचरियं में वर्णित कलाएं	५५	२४-२८
१०७. डॉ. त्रिलोकचंद कोठारी	संयुक्त परिवार सुरक्षा भाव देता है	५५	५३
१०८. श्री ज्ञानचंद जैन	भाई अजित प्रसाद	५७	१३-१६

खण्ड ख : सम्पादक श्री रमा कान्त जैन

अ- सम्पादकीय :	१ इस शती का गोम्मटेश बाहुबलि का प्रथम महामस्तकाभिषेक	५८	९-१०
	२. साहित्यिक पुरस्कार	५६	६
	३. शोधादर्श की षष्ठिपूर्ति	६०	७-९
आ-गुरुगुण-कीर्तन :	४७. श्री अगरचन्द नाहटा	५५	१-५ व ७
	४८. महात्मा भगवानदीन	५६	१-७
	४९. श्री अजित प्रसाद जैन	५७	१-७
	५०. श्री गणेशप्रसाद वर्णी	५८	१-८
	५१. श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरि	५९	१-५
	५२. पं. फूलचन्द्र शास्त्री	६०	१-६
इ-लेख :	२४. इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	५५	४७-४८
	२५. प्रेरक प्रसंग		६४
	२६. कुवलयमाला कहा	५६	५१
	२७. श्री अजित प्रसाद जैन		८४-८६
	२८. शाकाहार प्रचारक श्री महावीर प्रसाद जैन	५९	७९
	२९. डॉ. दौलतसिंह कोठारी	६०	४४-४७

ई- समाचार विमर्श :	१. मुम्बई में शाकाहार का बोलबाला	५६	५२
	२. कुतिया की ममता ने बचाया इंसान के बच्चे को		५२-५३
	३. बद्रीनाथ पर १६१६ किलो का निर्वाण लाडू चढ़ाया		५३-५४
	४. बूचड़खानों में बूढ़े बैल-सांड काटे जाने पर प्रतिबंध-उच्चतम न्यायालय का निर्णय	५८	६४
	५. अब तैयार होंगे एजुकेटेड कसाई	५६	७४
	६. 'भारत माता की जय' नारे पर पुंछ प्रशासन का प्रतिबंध		७४
	७. मिड डे मील में शामिल होगी मछली	६०	६५
	८. गुजरात धार्मिक स्वतंत्रता (संशोधन) विधेयक २००६		६५-६६
	९. नवरात्र में कुलदेवियों की पूजा अर्चना		६७
	१०. सुप्रीम कोर्ट की जैन मंदिर ढहाने पर फिलहाल रोक		६७-६८
	११. जागरण सिटी में प्रकाशित लेख		६८
उ- रिपोर्ट :	१. काव्य-संध्या डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के नाम	५६	५५
	२. श्रुत पंचमी-शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस		५६
	३. वीर शासन जयंती		५७
	४. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., द्वारा २८ जून, २००५ ई. को अभिव्यक्त श्रद्धांजलि	५७	४६
	५. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००५-०६	५६	५५-६०
ऊ- सामायिक परिदृश्य :			
क्षणिकाएं :	५५ (५८); ५६ (४५); ५८ (१०); ५६ (७०); ६० (२२)		
	खण्ड ग : विविध स्तम्भ		
साहित्य सत्कार :	५५ (५६-६३); ५६ (६२-७२); ५७ (६४-६६); ५८ (६७-७४); ५६ (६१-७०); ६० (६०-६४) के अन्तर्गत ८० कृतियों का		

परिचय/समीक्षा।

समाचार विविधाः ५५ (६५-६८); ५६ (५८-६०); ५८ (६५-६६); ५६ (७५-७८); ६० (६६-७०)

अभिनन्दन : ५५ (६६-७१); ५६ (७२-७४); ५७ (१००); ५८ (७५-७८); ५६ (८०-८१); ६० (७१-७२)

शोक संवेदन : ५५ (७१); ५६ (७४); ५७ (१०१); ५८ (७८); ५६ (८२); ६० (७३)

आभार : ५५ (७१); ५६ (७५); ५७ (१०१); ५८ (७६); ५६ (८२); ६० (७३)

पाठकों के पत्र : ५५ (७२-७८); ५६ (७६-८३); ५७ (१०२-१०४); ५८ (८०-८६); ५६ (८३-८६); ६० (७४-८०) के अन्तर्गत १२० पाठकों के पत्र।

खण्ड घ : प्रकीर्ण

स्वास्थ्य चर्चा ५५ (६८)

संकलित : चन्द्रप्रभ स्तवन ५५ (४८)
अमितगति कृत भावनाद्वात्रिंशतिका से ५६ (७);
वर्द्धमान स्तुति स्वयंभू स्तोत्र से ५६ (२७)
अजितनाथ स्तवन स्वयंभू स्तोत्र से ५७ (३५)
महावीराष्टक स्तोत्र से ५६ (१३)
संभवनाथ स्तवन स्वयंभू स्तोत्र से ६० (६)
कवि बिहारीलाल रचित 'रागी नर' ६० (१३)
शोधादर्श पर चन्द अभिमत ६० (६२-६५)

सूचियां : १. शोधादर्श में श्री अजित प्रसाद जैन की लेखनी का योगदान ५७ (८३-६१)
२. समन्वय वाणी में प्रकाशित श्री अजित प्रसाद जैन के सम्पादकीयों की सूची ५७ (६२-६३)
३. शोधादर्श में प्रकाशित २१ शोध-प्रबन्ध सार-संक्षेप ६० (८१)

शोधादर्श पर चन्द अभिमत

पं. नाथूलाल जैन शास्त्री, इंदौर

मैं अनेक सामाजिक पत्रिकाओं को देखता हूं। अनेक पत्रों का सम्पादक भी रहा हूं। परन्तु **शोधादर्श** के आलेख, जो अनुभवी लेखकों द्वारा लिखे गये हैं, तथा 'समाचार विमर्श' आदि जिन्हें सम्पादक जी ने अपनी लेखनी से उनका परिमार्जन कर समीक्षा एवं सुझाव के साथ प्रकाशित कराया है, एक सकारात्मक शैली में माधुर्य एवं स्पष्टवादिता के साथ निर्भीकता, यथार्थता, गम्भीरता और सामाजिक अनुभव का प्रदर्शन करते हैं जो अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता।

डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत

वर्तमान समाज को सही दिशा-दर्शन का कार्य कर रही है **शोधादर्श** पत्रिका। इसमें सम्पादक की कलम कुरीतियों एवं असत् मान्यताओं पर बराबर प्रहार करती है। यह निश्चित है कि इसमें प्रकाशित समीक्षाएं यथार्थ से जुड़ी हुई होती हैं।

(स्व.) डॉ. नेमीचंद, सम्पादक तीर्थंकर, इंदौर

शोधादर्श के माध्यम से आप जो दे रहे हैं, वह अद्भुत है। बधाई !

डॉ. बिनोद कुमार तिवारी, रोसड़ा

जैन धर्म और संस्कृति से सम्बंधित भारत की यह एक मात्र पत्रिका है, जो इतने स्पष्ट विचार प्रकट करने का साहस कर पाती है। यह शोध पत्रिका राष्ट्रीय स्तर की एक प्रमुख जैन पत्रिका का स्थान ले चुकी है।

(स्व.) पं. अमृतलाल शास्त्री, वाराणसी

शोधादर्श में प्रकाशित विद्वत्तापूर्ण आलेख, विशिष्ट समाचार और उनकी निर्भीक मार्मिक समीक्षा पढ़कर अमन्द आनन्द का अनुभव होता है।

(स्व.) श्री गुलाबचंद्र जैन, विदिशा

शोधादर्श का अंक प्राप्त होने पर आद्यन्त पढ़ना प्रकृति बन गई है। मुनि, मठाधीशों एवं स्वयं को महाविद्वान समझने वाले कुछ विद्वानों द्वारा किये गये आगम विरुद्ध एवं निन्दनीय आचरण को उद्धरित कर, उन पर भावनात्मक प्रहार करना **शोधादर्श** जैसी सशक्त पत्रिकाओं के लिये ही संभव है।

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद

समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों, पूर्वबद्ध धारणाओं, शिथिलाचार आदि के निरसन में हर कोई इतना खुलकर नहीं लिख सकता। इस सत्साहस के लिये कृपया बधाई स्वीकारें।

श्री सुरेश जैन 'सरल', जबलपुर

अनेक लेखों और पत्रों के नीचे सम्पादकीय टीप देकर आप अपना मत तो ज़ाहिर करते ही हैं, पाठकों को संदर्भ जुटाने में मदद भी करते हैं।। यह टीप देने का कार्य देशभर के पत्र-पत्रिकाओं के मध्य आप ही कर रहे हैं, जो जटिल कार्य है। आपके पत्र का आदर्श है बराबर, इसलिये उसका संज्ञाकरण 'शोधादर्श' बहुत उचित लगता है हर बार, हर अंक में।

पं. सरमनलाल दिवाकर, सरधना (मेरठ)

शोधादर्श भारतीय जैन पत्रिकाओं में अपना सर्वोच्च स्थान रखती है। इस पत्रिका में न कोई विज्ञापन है, न कोई मांग की जाती है। कोई भी स्तरहीन बात नज़र नहीं आती।

डॉ. कुलभूषण लोखंडे, संपादक दिव्य ध्वनि, सोलापुर

जहां सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा ऐतिहासिक तथ्य और सत्य उजागर करने में आप प्रयत्नशील हैं वहीं प्राचीन और अर्वाचीन सामाजिक समस्याओं को रखते हुए उनके उपयुक्त सुझाव भी दिये गये हैं। आप अपने संयम को संतुलित रखते हुए जो विचार प्रस्तुत कर रहे हो, वह कालोचित हैं। आपका अभिनंदन।

डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

शोधादर्श अपने नाम के अनुरूप धार्मिक-सामाजिक गतिविधियों पर जैन धर्म और दर्शन के आलोक में निर्भीक, साहसिक, स्पष्ट, सटीक, पक्ष-व्यामोह रहित यथार्थ पक्ष प्रस्तुत करने वाला निर्मल दर्पण है। इसमें सभी जाने-पहचाने पक्ष अपनी अंतर-बाह्य प्रवृत्तियों का स्वरूप वीतराग भाव से सहज ही देख सकते हैं। ऐसी साहसिक, सार-भूत पत्र-पत्रिका पढ़ने में नहीं आयी।

डॉ. अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद

आपकी जो सूक्ष्म दृष्टि है वह प्रशंसनीय है। चाहे वह पुस्तक समीक्षा हो या कोई समाचार, आपकी विशेष टिप्पणी के साथ होता है जो कि बहुत ही सटीक होती है।

श्री शैलेश कापड़िया, सम्पादक 'जैन मित्र', सूरत

समाज को गुमराह होने से बचाने, शिथिलाचार को रोकने हेतु यथार्थ दिशाबोध देने वाली पत्रिका **शोधादर्श** है। संपादकीय अंक का प्राण है। 'समाचार विमर्श' में की गई समीक्षा समाज की गतिविधियों का दर्पण है जिन्हें देख, पढ़ और सुनकर मस्तक झुक जाता है।

(late) Dr. M. D. Vasantraj, Mysore.

Shodhadarsh is one such marvellous magazine that keeps me waiting with curiosity for matters of great interst, Every time I recive it, it binds me to go through it fully at a stretch. Every time it brings me new flash of thoughts on different topics pertaining to our history, literature, religion, society etc.

(late) Dr. Ramesh Chandra Sharma,
former Director] National Museum

The contents of the journal Shodhadarsha are wide, useful, informative and help the students and researchers in their academic pursuits.

Sri Satish Kumar Jain, New Delhi

Shodhadarsh contains wide information on Jain matters and very good articles, mainly analytical and critical giving material for the scholars,

Sri Shanti Prakash Jain, IAS (Retd) Meerut

Shodhadarsh proved to be a treasure house of knowledge, I learnt quite a few new things. It is indeed a pleasant and rewarding exercise to go through the contents of Shodhadarsh.

श्री श्रीकिशोर जैन, दिल्ली

शोधादर्श में प्रकाशित बेबाक टिप्पणी कभी-कभी पढ़ने में आ जाती है। मन खुश होता है कि जैन पत्रकारिता जीवित है।

डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, सम्पादक 'मानस चन्दन', सीतापुर

शोधादर्श में प्रकाशित प्रायः सम्पूर्ण सामग्री पर्याप्त विचारोत्तेजक है, श्रेष्ठत्व की ओर अग्रसर होने के लिये प्रेरक तो है ही।

श्री मिट्ठूलाल डागा, सम्पादक 'ओसवाल महिमा', जोधपुर

शोधादर्श पत्रिका शोध करने वाले बन्धुओं के लिये अत्यंत उपयोगी है। धर्म का मर्म यदि चाहिये तो यह पत्रिका सोने में सुहागा है।

डॉ. रज्जनकुमार, रुहेलखण्ड वि. वि., बरेली

शोधादर्श जैन जगत में होने वाले विविध कार्यकलापों की जानकारी का मेरे लिये बरेली में एक सर्वोत्तम प्रामाणिक स्रोत है। पत्रिका में छपे लेखों का अपना वैशिष्ट्य है।

श्री संजय शास्त्री, अलीगढ़

कई पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ता रहा हूँ, लेकिन शोधखोजपूरक जिस प्रकार की सामग्री **शोधादर्श** में पढ़ने को मिली वैसी इसके पूर्व कहीं नहीं पा सका।

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है। मनीआर्डर भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्ट कार्ड पर भी अपने पूरे नाम पते के साथ अवश्य भेजें।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें यथासंभव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। *लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।*

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं की दो *प्रतियां* भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु *शोधादर्श* का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुँचने की सूचना भी देवें।

– सम्पादक